टाईम | टेक्नोलॉजी इन्टरवेनशन फॉर माउण्टेन इकोसिस्टम

हैस्को व सीड डिविजन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली के सहयोग से
टाईम–लर्न कार्यक्रम के अंतर्गत प्रकाशित

वर्ष : 2017- 2018 www.hesco.in अंक - 17

साइंस फॉर इक्विटी, एम्पावरमेंट एवं डेवलपमेंट (सीड) डिवीजन, डी.एस.टी., नई दिल्ली
एवं
हिमालयन पर्यावरण अध्ययन एवं संरक्षण संगठन (हैस्को), देहरादून, उत्तराखण्ड

संपादकीय

भारतीय हिमालय क्षेत्र, हिमालय की जैव-विविधता के प्रमुख स्थलों का लगभग 70 प्रतिशत क्षेत्रफल है। यह 5 लाख वर्ग किमी. (0.5 मिलि. वर्ग किमी.) भू-क्षेत्र में फैला है, जो भारत के भू-भाग का 16.2 प्रतिशत है। यह क्षे्त्र राष्ट्र की एक अद्वितीय धरोहर हैं और इसे सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाती हैं। इसके घने जंगल, इस उप-महाद्वीप की सदा बहने वाली नदियों को हमेशा पानी से भरा रखते हैं, पीने, सिंचाई और जल-विद्युत के लिए पानी उपलब्ध कराते हैं और हमारी समृद्ध जैव-विविधता के महत्त्वपूर्ण घटकों का संरक्षण भी करते है। हिमालय के परिस्थितिकीय तंत्र का निरंतर प्रबंधन करना न केवल इसकी पुरातन सौंदर्यता और शानदार भू-संरचना के संरक्षण के लिए बल्कि संपूर्ण भारतीय उप-महाद्वीप की पारिस्थितिक सुरक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र के वहनीय विकास को सुनिश्चित् करना एक चुनौती भरा काम है और इसका कोई आसान उपाय भी नहीं है। हमें नई खोज करते रहना हैं और यह सुनिश्चित करना है कि स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुऐ यहां रहने वाले लोगों का सतत विकास कैसें संभव हो सकता है।

पर्वतों के पारितंत्र के सतत विकास के लिए समुचित भूमि उपयोग का नियोजन और जल प्रबंधन को अपनाना, संवेदनशील पारितंत्र और भू-संरचना को क्षति पहुंचाने से बचाने एवं क्षति को न्यूनतम करने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में बुनियादी संरचना के निर्माण हेतु उचित व्यवहार को अपनाना, किसानों के विकास व अधिक मूल्य प्राप्त करने में सक्षम बनाने के लिए जैविक कृषि को प्रोत्साहित कर फसलों और बागवानी की परंपरागत किस्मों को उगाने के लिए प्रोत्साहित करना एवं स्थानीय समुदायों को आजीविका प्राप्त करने में सक्षम बनाने हेतु विभिन्न तकनीकी ज्ञान को गाँव व किसान तक पहुँचाना हमारा मुख्य उद्देश्य है। इसी प्रयोजन के मद्देनज़र भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत सीड प्रभाग द्वारा उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में 20 परियोजनाऐं 2016-17 से चलाई जा रही हैं। इन्हीं परियोजनाओं के अंतर्गत विभिन्न सफल प्रयोगों को इस पत्रिका में प्रति वर्ष प्रकाशित किया जा रहा है ताकि इन कठिन परिस्थियों में रहने वाले किसान इन सफलतम प्रयोगों का अधिक से अधिक लाभ उठा सके ।

विषय-सूची

1. उन्नत पशु व मुर्गी पालन एवं अधिक दुग्ध उत्पादन हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम—जम्मू 2
2. हिमाचल प्रदेश में किन्नौर और लाहौल स्पीति के जनजातीय क्षेत्रों में सेब के विषाणुमुक्त इलीट मदर ब्लॉक की स्थापना 6
3. तापीय नियंत्रक प्रणाली सहित अधिक दक्षता वाला परोक्ष सौर शुष्कक 11
4. देसी मधुमक्खी पालन की "मड—हाईव" तकनीक 14
5. हिमालय क्षेत्र की भोजन सुरक्षा में पंरपरागत फसलों का योगदान 19
6. सब्जियों का उत्पादन दोगुना करने के लिए नर्सरी (पौधशाला) विकसित करना 26
7. हिमालय में मानव—वन्यजींव संघर्ष विघटन 35
8. उत्तर पश्चिमी हिमालय की पारंपरिक उपेक्षित फसलों का पोषण सुरक्षा में महत्व 38
9. पानी व कमरा गर्म करने के लिए सौर ऊर्जा संयत्र/पैनल बनाना 43
10. वर्ष 2017—18 के दौरान टाईम—लर्न कार्यक्रम के अंतर्गत किये गये प्रमुख कार्यो की सूची 48

सलाहकार समिति :

डॉ. अनिल प्रकाश जोशी, हैस्को, देहरादून

डॉ. सुनील कुमार अग्रवाल, डी०एस०टी०, नई दिल्ली

डॉ. सुभाष नौटियाल, एफ०आर०आई०, देहरादून

डॉ. रूची बडौला, डब्ल्यू०आई०आई०, देहरादून

डॉ. एस.एस. सामन्त, जी०बी०पी०एन०आई०एच०ई०एस०डी०, कुल्लू

सम्पादक मण्डल :

डॉ० राकेश कुमार, हैस्को, देहरादून

डॉ० अनीष एन०पी०, डी०एस०टी०, नई दिल्ली

डॉ० किरन नेगी, हैस्को, देहरादून

डॉ० हिमानी पुरोहित, हैस्को, देहरादून

इं० प्रशांत कुमार शर्मा, हैस्को, देहरादून

सज्जा एवं टंकण सहायक :

मनीष राठौर, हैस्को, देहरादून

उन्नत पशु व मुर्गी पालन एवं अधिक दुग्ध उत्पादन हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम - जम्मू

प्रस्तावना -

हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था कृषि कार्य पर आधारित है। निरन्तर घटती कृषि योग्य भूमि, बढ़ता औद्योगिकीकरण, निरन्तर घटती आय लोगों का शहरों की तरफ पलायन एवं प्रतिकूल मौसम कृषि कार्य पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है। असिंचित भूभागों में कृषि कार्यों की वर्षा/मौसम पर निर्भरता भी कृषकों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ऐसे स्थानों पर कृषकों द्वारा उन्नत पशुपालन एवं घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन आय का एक अच्छा वैकल्पिक स्रोत हो सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि पशुपालक एवं मुर्गीपालक, पशुपालन एवं घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन की वैज्ञानिक विधियों की जानकारी के अभाव में उचित लाभ अर्जित नहीं कर पाते हैं।

सर्वेक्षण करने पर पाया गया है कि जम्मू के असिंचित क्षेत्रों/कंडी भागों में दुधारु पशुओं में बांझपन एवं कम दूध उत्पादन की समस्या प्रमुख रूप से विद्यमान हैं जिसका मुख्य कारण पशुओं को वर्ष भर मिलने वाला असन्तुलित आहार, पशुओं में परजीवी की समस्या, पशुओं का मदकाल में न आना/हीट में न आना, हीट का पता न चलना एवं उन्नत किस्म की ब्रीडिंग पॉलिसी का अभाव है।

मुर्गी पालक घर के पिछवाड़े, उन्नत किस्म की पोल्ट्री वैज्ञानिक विधि से पालकर अपने परिवार के लिए न केवल अच्छे किस्म के अण्डे एवं मांस प्राप्त कर सकते हैं बल्कि इन चीजों को बाजार में बेचकर अच्छा धन भी अर्जित कर सकते हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए निम्न उद्देश्यों के साथ इस परियोजना को जम्मू के कंडी भाग में प्रारम्भ किया गया –

1. गाय एवं भैसों में दो बछड़ों के जन्म के बीच के अन्तराल को कम करना।
2. वैज्ञानिक विधि द्वारा घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन का प्रशिक्षण प्रदान करना एवं घर के पिछवाड़े मुर्गी इकाइयों की स्थापना करना।
3. पशुपालकों अथवा बेरोजगार युवक–युवतियों को प्रशिक्षण द्वारा दूध एवं मांस से मूल्य वर्धित उत्पाद तैयार कर आर्थिक रूप से समग्र बनाना।

परियोजना में क्षेत्र का चयन -

परियोजना में जम्मू संभाग के असिंचित क्षेत्रों का चयन किया गया जहाँ कृषक, सिचाई के साधन उपलब्ध न होने की वजह से खेती के लिए केवल वर्षा पर निर्भर करते हैं तथा अक्सर उचित समय पर वर्षा न होने से खेती से उचित लाभ अर्जित नहीं कर पाते हैं। इस परियोजना में जम्मू संभाग के दो जिलों का चयन किया गया है।

1. जम्मू–जम्मू जिले से चोबादी एवं चकशियां गाँव का चयन किया गया है।
2. सांबा–सांबा जिले से खारा, मदाना, संगढ़ एवं बड़ा क्षेत्र गाँवों का चयन किया गया है।

डेयरी पशुओं में बाह्य एवं आन्तरिक परजीवियों की रोकथाम -

परजीवी वह जीव हैं जो पशुओं के शरीर पर बाहर अथवा अन्दर रहकर, पशु द्वारा ग्रहण किये गये

भोजन से अपना भोजन ग्रहण करते हैं। कुछ परजीवी ऐसे भी होते हैं जो पशु से रक्त चूसकर जीवित रहते हैं। इस प्रकार या तो पशु सन्तुलित भोजन प्राप्त नहीं कर पाता अन्यथा परजीवी द्वारा रक्त चूसने की वजह से पशु कमजोर होता चला जाता है जिसका सीधा प्रभाव पशु की दुग्ध उत्पादन क्षमता पर पड़ता है। परजीवियों से ग्रसित पशुओं में दूध एवं मांस उत्पादन लगातार घटता चला जाता है। पशुओं में बाह्य परजीवियों का संक्रमण होने पर खाल की गुणवत्ता कम हो जाती है। जिससे पशुपालक एवं राष्ट्र को आर्थिक हानि होती है। अन्तः परजीवियों के संक्रमण का पता लगाने के लिए चयनित गाँवों के दुधारू पशुओं के मल का प्रयोगशाला में परीक्षण किया गया। परीक्षण उपरान्त परियोजना के प्रथम वर्ष में 325 दुधारु पशुओं का परजीवीनाशक दवाओं से उपचार किया गया। पारएम्फीस्टोम्स से संक्रमित पशुओं को 'ऑक्सिक्लोजानाइड' से पशुओं के शारीरिक भार के हिसाब से उपचारित किया गया जबकि बाह्य परजीवियों की रोकथाम के लिए 'अमित्राज़' का प्रयोग किया गया। पशुपालकों को सलाह दी गयी कि पशुओं से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए छोटे पशुओं में प्रतिमाह तथा बड़े पशुओं में प्रति छः माह के अन्तराल पर पशु चिकित्सक की मदद से कृमिनाशक दवाओं का प्रयोग करें।

दुधारु पशुओं में बाँझपन की समस्या एवं निदान -

पशुओं में प्रजनन क्षमता का रुक जाना अथवा उसकी विफलता 'बाँझपन' या 'इन्फर्टीलिटी' कहलाती है जिससे न केवल पशुपालक को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है बल्कि श्रेष्ठ जर्मप्लाज्म भी नष्ट हो जाता है। बाँझ पशुओं का उचित इलाज करके पशुओं को आसानी से दूधारू पशु बनाया जा सकता है और आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है। पशुओं में बाँझपन के मुख्य कारण जनन ग्रन्थियों की गड़बड़ी, जीवाणुओं अथवा परजीवियों का संक्रमण, कुपोषण, मिनरल्स की कमी, असन्तुलित आहार, जनन अंगों की दोषपूर्ण बनावट, अधिक आयु, प्रतिकूल वातावरण इत्यादि है। अधिकांश पशुओं में सन्तुलित आहार, मिनरल मिक्स्चर प्रदान करके पशु का हार्मोनल उपचार करके न केवल पशु से संतति प्राप्त की जा सकती है बल्कि पशु में दो बच्चों के मध्य अंतराल को भी नियंत्रित किया जा सकता है। इस परियोजना के अर्न्तगत प्रथम वर्ष में चयनित गाँवों में क्रिस्टार ईयर इम्प्लान्ट, सी० आई० डी० आर० इम्प्लान्ट एवं ओवसिन्च प्रोटोकॉल का प्रयोग करके 60 गोवंशीय पशुओं का उपचार किया गया।

उपरोक्त हार्मोनल प्रोटोकॉल का प्रयोग करके 5–15 पशुओं के झुंड में ईस्ट्रस इन्डक्शन, सिन्क्रोनाइज़ेशन एवं नियतकालिक कृत्रिम गर्भधारण कराया गया। साथ ही साथ पशुपालकों को उचित समय पर गर्भधारण की आवश्यकता, कृत्रिम गर्भधारण का महत्व, गर्भधारण किये हुऐ पशुओं की उचित देखभाल एवं बछड़े के जन्म के उपरान्त प्रयोग में लायी जानी वाली मुख्य जानकारियों से अवगत कराया गया।

घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालन पर प्रशिक्षण एवं गाँवों में यूनिटों की स्थापना -

पिछले तीन दशकों में भारत में मुर्गी पालन के क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हुई है। यही कारण है कि भारत आज विश्व में अण्डा उत्पादन में तीसरे एवं मुर्गी पालन में चौथे स्थान पर कायम है। लोगों में अच्छे एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों के प्रति बढ़ती जागरूकता के फलस्वरूप मुर्गी के अंडे एवं मुर्गी के मांस की मांग बहुत तेजी से बढ़ी है यही कारण है कि आज मुर्गी पालन ने एक बड़े व्यवसाय का रूप ले लिया है और आज देश को अपनी कुल घरेलु सकल आय का 1 प्रतिशत मुर्गी पालन से प्राप्त होता है। घर के पिछवाड़े से मुर्गी पालन करके (बैकयार्ड पोल्ट्री पालन) न केवल अपने परिवार को वर्षभर प्रोटीन से भरपूर अण्डे प्राप्त कराये जा सकते हैं, बल्कि इन अण्डों को बेचकर धन भी अर्जित किया जा सकता है। परियोजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय में मुर्गी पालको को प्रशिक्षण के लिए एक आदर्श यूनिट स्थापित की गयी है। मुर्गी पालक अपने घर के पिछवाड़े 10–10 मुर्गियों की यूनिट बिना किसी खर्च अथवा बहुत नगण्य खर्च पर स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार के मुर्गी पालन में अण्डों की उत्पादन दर मुर्गी के स्ट्रेन पर निर्भर करती है। यह देखा गया है कि घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन में जहाँ अवर्णित स्ट्रेन की मुर्गियाँ 50–60 अण्डे प्रतिवर्ष देती हैं वहीं अच्छे स्ट्रेन की मुर्गीयाँ 140–150 अण्डे प्रतिवर्ष देती हैं। इस परियोजना के तहत प्रथम वर्ष में चयनित गाँवों से 150 परिवारों को प्रशिक्षण प्रदान किया गया तथा उनके घर के पिछवाड़े 10–10 मुर्गियों की 150 यूनिट स्थापित की गयी है। इन यूनिटों में अच्छी नस्ल (वनराजा) के वैक्सीनेटिड "डे ओल्ड" चूजे प्रदान किये गयें। घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन का मुख्य लाभ यह है कि इस प्रकार के मुर्गी पालन में मुर्गीयों के लिए बाहर से फीड प्रदान नही करना पड़ता। घर का बचा खाना–झूठन इत्यादि से ही मुर्गियाँ अपना पोषण ग्रहण करती हैं। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार के मुर्गी पालन में चूंकि मुर्गियाँ औषधीय पौधों एवं कीड़े–मकोड़ों का भी सेवन करती हैं अतः इनसे प्राप्त अण्डे एवं मांस उत्तम संवेदी गुणवत्ता के होते हैं। वनराजा मुर्गियों से प्राप्त अण्डे ब्राउन कलर के होते हैं और इनसे मार्केट में अच्छा मूल्य मिलता है।

दूध एवं मांस से मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार कर लाभ कमाने हेतु प्रशिक्षण -

उत्तम गुणवत्ता के कारण पशु जनित खाद्य पदार्थों की माँग में पिछले दो दशकों में बहुत तेजी से इजाफा हुआ है। पशु जनित खाद्य पदार्थों जैसे दूध, अण्डे एवं मांस में सर्वश्रेष्ठ क्वालिटी प्रोटीन होता है तथा इसका जैविक मान भी वैजीटेबिल प्रोटीन की अपेक्षा काफी अधिक होता है तथा मनुष्य के शरीर द्वारा पशु जनित खाद्य पदार्थ में उपस्थित प्रोटीन का लगभग सम्पूर्ण भाग ग्रहण कर लिया जाता है। प्रोटीन का प्रयोग ऊतकों की मरम्मत एवं मांसपेशियों के निर्माण में होता है। अतः पशु जनित खाद्य पदार्थों के बिना स्वस्थ शरीर की परिकल्पना करना भी संभव नहीं है। प्रायः यह देखा गया है कि पशुपालक एवं मुर्गीपालक दूध अथवा मुर्गियों को बिना प्रसंस्करण करे ऐसे ही बेच देते हैं जिससे वह अधिक लाभ अर्जित नही कर पाते हैं। यदि दूध एवं मांस से कुछ मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार कर बेचे जाऐ

तो पशुपालक एवं मुर्गीपालक 100 प्रतिशत अथवा उससे अधिक लाभांश प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः देखा गया है कि गर्मीयों के दिनो अथवा नवरात्रों में मुर्गी की सेल/बिक्री काफी कम हो जाती है और मुर्गी पालक मुर्गियों को बेचकर उचित मुल्य प्राप्त नही कर पाते हैं। इस समय पर यदि मुर्गियों से कुछ मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे की मुर्गे का अचार बनाकर रख दिया जाए तो इन उत्पादों को उचित मूल्य मिलने पर बाज़ार में बेचा जा सकता है। इस प्रकार तैयार किये अचार की निधानी आयु (सैल्फ लाइफ) 3–4 महीने होती है तथा इन प्रोडक्ट्स को ग्रामीण अंचल में बिना रेफ्रीजिरेशन की सुविधा के भी कमरे के तापक्रम पर भण्डारण किया जा सकता है। परियोजना के प्रथम वर्ष में 120 प्रशिक्षणार्थियों को दूध एवं मांस से तैयार होने वाले विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों जैसे पनीर बनाना, श्रीखण्ड बनाना, कलाड़ी बनाना, दूध के व्हे से ड्रिंक एवं सूप बनाना, मांस से अचार एवं नगेट्स बनाने एवं उनकी पैकिंग करने का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

राजेश कटोच एवं सुनील कुमार
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन संकाय,
शेर–ए–कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
आर.एस. पुरा,–181 102, जम्मू

हिमाचल प्रदेश में किन्नौर और लाहौल स्पीति के जनजातीय क्षेत्रों में सेब के विषाणुमुक्त इलीट मदर ब्लॉक की स्थापना

सेब हिमाचल प्रदेश और विशेष रूप से किन्नौर जिले की मुख्य नकदी फसल है। इसके इलावा सेब का उत्पादन लाहौल और स्पीति जिलों के कुछ इलाकों में भी फैला हुआ है। इन क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से सेब के उत्पादन पर ही निर्भर करती है। बदलते जलवायु की परिस्थितियों के साथ, किन्नौर और लाहौल–स्पीति में सेब की खेती के क्षेत्रों में बढ़ौतरी हो रही है, जिसके लिए गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री अति आवश्यक है।

गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री सेब के साथ किसी भी अन्य फल की खेती के लिए लाभकारी होती है। हिमाचल प्रदेश में राज्य बागवानी विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, आई सी ए आर (ICAR) संस्थान या निजी नर्सरी उत्पादकों से बागवान रोपण सामग्री की खरीद करते हैं। हिमाचल प्रदेश में कई नर्सरी हैं लेकिन राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड द्वारा केवल कुछ ही नर्सरी पंजीकृत की गई हैं। हिमाचल प्रदेश में कम पंजीकृत नर्सरी के लिए मुख्य कारण विषाणु–मुक्त अभिजात वर्ग मदर ब्लॉक की कमी है। नर्सरी पौधों की व्यावसायिक बिक्री के लिए किसी भी नर्सरी केंद्र में महत्वपूर्ण किस्मों का इलीट मदर ब्लॉक अनिवार्य है। किसान/नर्सरी उत्पादकों को मदर प्लांट के आकारिकी और उपज मापदंडों के बारे में पता है। वह फंगल/बैक्टीरिया संक्रमण वाले पौधों का पता लगा सकते हैं। लेकिन विषाणु संक्रमण होने वाले पौधों की पहचान करना किसानो के लिए लगभग असंभव है, क्योंकि अधिकांश सेब के विषाणु प्रकृति में अव्यक्त हैं, और इसकी पहचान के लिए परिष्कृत प्रयोगशाला और अनुभवी श्रमशक्ति की आवश्यकता होती है। प्रमुख चार विषाणु हैं, जो सेब को संक्रमित करने के लिए जाने जाते हैं। इसमें एप्पल क्लोरोटिक लीफ स्पॉट वायरस (ACLSV), ऐप्पल मोजेक वायरस (ApMV), ऐप्पल स्टेम ग्रूविंग वायरस (ASGV), ऐप्पल स्टेम पिटिंग वायरस (ASPV) और स्कार स्किन वाइरॉइड (ASSVd) शामिल हैं, ऐप्पल मोजेक वायरस को छोड़कर अन्य कोई भी विषाणु (ACLSV, ASGV and ASPV) सेब के पौधों पर अधिकतर समय तक कोई भी लक्षण नहीं दिखाते हैं।

वर्तमान में अधिकतम नर्सरी उत्पादक और साथ ही किसान अज्ञात स्वास्थ्य स्थिति के सेब के पौधों से सायन वुड का उपयोग करते हैं। इसके परिणाम स्वरुप विषाणु संक्रमित पौधों को लगाते हैं, जो अंततः उपज, फल की गुणवत्ता और पेड़ के उत्पादक जीवन को प्रभावित करते हैं। किन्नौर और लाहौल–स्पीति जैसे भौगोलिक दृष्टि से मुश्किल क्षेत्र हैं। इन इलाकों में सर्दियों के महीनों में सीमित परिवहन होते हैं। सामान्यतः यह समय सेब के लिए आदर्श रोपण का समय है। किन्नौर और लाहौल–स्पीति में नए बागों के रोपण, पुरानी बागों के कायाकल्प की वजह से रोपण सामग्री लगाने के लिए बहुत बड़ी मांग है। इसके इलावा एक और समस्या है कि ज्ञात वंशावली वाली रोपण सामग्री को प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इन समस्याओं ने हमें ''हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र किन्नौर और लाहौल स्पीति में सेब के विषाणु–मुक्त इलीट मदर ब्लॉक की स्थापना'' नामक एक परियोजना को तैयार करने की प्रेरणा दी।

विषाणु मुक्त अभिजात वर्ग के पौधों की पहचान करने के लिए किसानों की सक्रिय भागीदारी पाने के लिए एक प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। किन्नौर जिले के 16 पंचायतों में प्रधान की उपस्थिति में विषाणु–मुक्त गुणवत्ता वाले रोपण सामग्री के बारे में जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया गया था। "किन्नौर सेब प्रतियोगिता" में किसान बढ़चढ़कर सहभागी हुए। कुल 312 सर्वश्रेष्ठ पौधे किसानों ने प्रस्तावित किए (चित्र 1)। प्रत्येक किसान द्वारा सुझाए गए सर्वश्रेष्ठ पौधे को अद्वितीय कोड (ब्लॉक नाम/ग्राम नाम /नमूना संख्या) (चित्र 2) के साथ चिह्नित किया गया।

चित्र 1 : नाको पंचायत में विषाणु मुक्त गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री पर जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन

चित्र 2 : पूह ब्लॉक के सुमारा पंचायत में किसान द्वारा प्रस्तावित मदर पौधों को चिह्नित करना

क्षेत्र के दौरे के दौरान किसानों द्वारा प्रस्तावित अलग–अलग सेब के पेड़ों का दौरा किया गया, जिसमें फंगल, बैक्टीरिया, वायरल और फाइटोप्लास्मा सहित विभिन्न बीमारियों के लक्षणों को देखा गया। कुछ पेड़ों में विशिष्ट विषाणु–लक्षण जैसे कि हरिद्रोग, पत्तों का मुड़ना व सिकुड़ना, परिगलन, मोजेक आदि को भी पाया गया (चित्र 3)।

चित्र 3 : क्षेत्र के दौरे के दौरान पाए गए विषाणु-जैसे लक्षण

किसानों द्वारा प्रस्तावित मदर पौधों के पत्तों के नमूनों को एकत्रित किया गया और डी ए एस (DAS-ELISA) द्वारा उनको जांचा गया (चित्र 4)।

पांच विषाणुओं (ACLSV, ASGV, ApMV, ASPV, PNRSV और एक फाइटोप्लास्मा एप्पल प्रोलिफिरेशन (ApP) की उपस्थिति के लिए परीक्षण किया गया। DAS-ELISA के परिणामों से निचार तहसील में ASGV 33. 3 % पौधों में पाया गया, इसके बाद ACLSV 6.6% पौधों में पाया गया। जबकि, PNRSV, ApMV, ASPV और फाइटोप्लास्मा (ApP) किसी भी मदर पौधें में नहीं पाया गया। इसी तरह, तहसील सांगला में ACLSV 15.5% और ASPV 2.5% के अनुपात में पाया गया। जबकि पौधे PNRSV, ApMV, ASGV और फाइटोप्लास्मा (ApP) से मुक्त पाए गए। दूसरी तरफ तहसील कल्पा में ASPV 76.5 %, ACLSV 45.3 %, ASGV 28.1 % और PNRSV की 15.6% में पाया गया। जबकि मदर पौधे में ApMV और फाइटोप्लास्मा (ApP) की कोई घटना नहीं पाई गई (चित्र 5)।

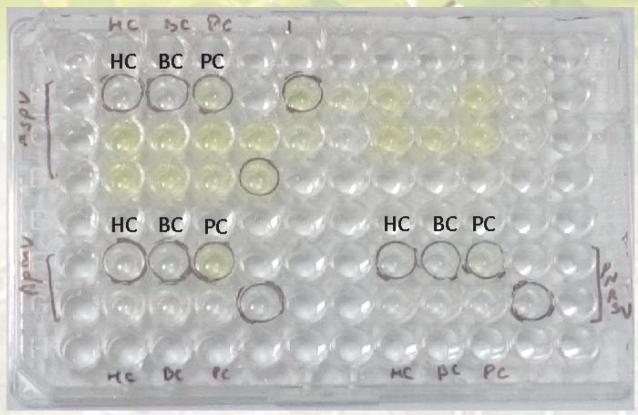

चित्र 4 : प्रतिनिधि DAS-ELISA प्लेट विभिन्न वायरस के लिए परख के परिणाम दिखा रही है। पीले रंग के नमूने सकारात्मक नमूनों को दर्शाते हैं, जबकि रंगहीन स्वस्थ नमूनों को दर्शाते हैं। HC-स्वस्थ कंट्रोल, BC-बफर कंट्रोल और PC-पॉ जिटिव कंट्रोल

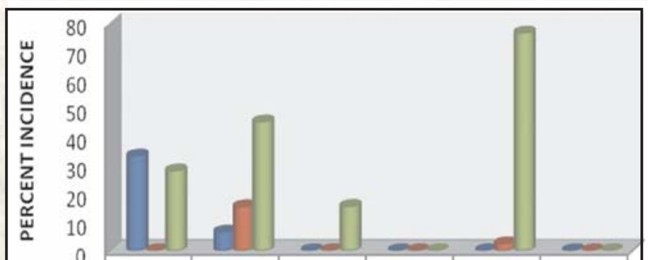

	ASGV	ACLSV	PNRSV	ApMV	ASPV	ApP
Nichar	33.3	6.6	0	0	0	0
Sangla	0	15.5	0	0	2.5	0
Kalpa	28.1	45.3	15.6	0	76.5	0

चित्र 5 : किन्नौर के लिए संयुक्त DAS-ELISA परिणाम

DAS-ELISA द्वारा प्राप्त परिणामों को और अधिक संवेदनशील आणविक पहचान तकनीक RT-PCR का प्रयोग करके मान्य किया जायेगा, ताकि झूठी सकारात्मक और नकारात्मक नमूने की संभावना को खत्म कर सके। मदर पौधे जो कि विषाणु और विषाणु – जैसे रोगजनकों से मुक्त पाए जाएंगे, उनको आगे बढ़ाया जायेगा। यह प्रक्रिया किसानों को विषाणु से मुक्त रोपण सामग्री की आपूर्ति सुनिश्चित करेगी जिससे कि बागों की स्थापना के लिए उत्पादकता और सेब के उत्पादन में वृद्धि करने में मदद मिलेगी।

इसके अलावा सेब के फल के नमूनों को भी एकत्र किया गया और प्रयोगशाला में निम्न पैरामीटरों का उपयोग करके गुणवत्ता विश्लेषण किया गयाः लंबाई, चौड़ाई, वजन, रंग, फल का आकार, आकर्षण, टी एस एस (TSS), दृढ़ता, खाने की गुणवत्ता, बनावट, भंडारण जीवन आदि। इसके इलावा फल का वजन हर महीने दर्ज किया जाता है तथा टी एस एस (TSS) और फल दृढ़ता का विश्लेषण हर दो महीनों (चित्र 6) के अंतराल के बाद किया जाता है। कमरे के तापमान को पांच महीनों के लिए दैनिक (तीन बार) दर्ज किया जाता है।

विश्लेषण के दौरान उच्चतम फल टी एस एस (TSS) को पूह ब्लॉक के नाको पंचायत के फल नमूनों में दर्ज किया गया है, जबकि सबसे कम टी एस एस (TSS) कल्पा ब्लॉक की पुरबानी पंचायत में दर्ज किया गया है। टी एस एस (TSS) में भिन्नता, ऊंचाई और जलवायु कारकों के कारण से हो सकती है।

चित्र 6 : विभिन्न मापदंडों का उपयोग कर फल के डेटा की रिकॉर्डिंग

भण्डारण गुणवला के लिए पांच महीने तक फलों के नमूने का विश्लेषण किया गया। यह देखा गया कि कुछ ब्लॉकों के नमूनों में गलन दिखाई दी है, जबकि कुछ ब्लॉकों में फल गलन प्रतिशत न्यूनतम था। सांगला पंचायत के फलों में गलन सबसे ज्यादा पाई गई, यह इस कारण से हो सकता है कि सांगला को अच्छी वर्षा मिलती है और इसके आस पास जलाशय भी हैं।

वायरस इंडेक्सिंग और फल गुणवत्ता वाले आंकड़ों को पहले वर्ष में दर्ज किया गया है। द्वितीय वर्ष में आर टी–पी सी आर (RT-PCR) के माध्यम से वायरस इंडेक्सिंग किया जाएगा, जहां दूसरे और तीसरे वर्ष में फल की गुणवत्ता का विश्लेषण दोहराया जाएगा। इस आधार पर सेब के इलीट मदर पौधों की पहचान की जाएगी । इस प्रकार, इस परियोजना के क्रियान्वयन के पहले भाग में हम किन्नौर जिले में किसानों के खेतों पर सेब के मदर पौधों की पहचान करेंगे (जो वायरल रोगों से मुक्त हैं)।

इसके अलावा, दूसरे भाग में, किसानों के खेतों पर इस परियोजना में पहचाने गए वायरस मुक्त इलीट मदर पौधों का मदर ब्लॉक स्थापित किया जायेगा इनका उपयोग करके किसान पौधशाला तैयार कर सकता है, और किए हुए पौधे बेच सकता है। इसलिए, इस परियोजना के सफल क्रियान्वयन के बाद किन्नौर और लाहौल–स्पीति जिलों के किसानों को स्थानीय रूप से वायरस मुक्त गुणवत्ता वाले रोपण सामग्री प्राप्त कर सकेंगे।

अभिस्वीकृति : लेखक प्रयोगशाला सुविधाओं के लिए सी पीआर आई (CPRI), शिमला को तथा निदेशक, संयुक्त निदेशक (अनुसंधान) आई ए आर आई (IARI), नई दिल्ली और विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (DST), नई दिल्ली को सहयोग और वित्तीय सहायता के लिए आभार व्यक्त करते हैं।

संतोष वाटपाडे[1], पूजा भारद्वाज[1], राकेश कुमार[1], कल्लोल कुमार प्रामाणिक[1], अरुण कुमार शुक्ल[1], बस्वाराज रायगोंड[2], विक्रम नेगी [1] और शारदा शर्मा

[1]भा.कृ.अ.प.–भा.कृ.अ.सं., क्षेत्रीय स्टेशन, शिमला–171004,

[2]भा.कृ.अ.प.–के.आ.अ.सं., शिमला–171001

Email : santoshpathology@gmail.com

तापीय नियंत्रक प्रणाली सहित अधिक दक्षता वाला परोक्ष सौर शुष्कक

हिमाचल प्रदेश को भारत के फल प्रदेश के नाम से जाना जाता है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में साल भर अलग–अलग किस्म के फल और सब्जियों का काफी मात्रा में उत्पादन होता है। वास्तव में फलों और सब्जियों का अधिक मात्रा में उत्पादन लोगों के लिए आय का मुख्य स्रोत है। लेकिन क्योंकि किसान इन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रख सकता, इसलिए कम से कम समय में इनको बाजार में पहुंचाना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी सुविधा प्रत्येक समय हर व्यक्ति को उपलब्ध नहीं होती। खराब मौसम, यातायात की समुचित सुविधा उपलब्ध न होना या खेत का सड़क से दूर होना आदि ऐसे कई कारण हैं जिनसे फल और सब्जियों का बड़ा हिस्सा खराब हो जाता है। इसके अतिरिक्त हर जगह कोल्ड स्टोर की सुविधा भी नहीं होती जिसकी वजह से किसान अपने उत्पाद को अच्छे भाव मिलने तक रोक नहीं पाता है। इसलिए किसान विशेष प्रकार के फलों और सब्जियों को परम्परागत ढंग से अपने घरों में ही खुली धूप में सुखाकर बाजार में बेचते हैं। अदरक, लहसुन, मटर, खुमानी, सेब, बीन, अनारदाना, अखरोट, न्योजा, बादाम, मिर्च, हल्दी, धनियां, कीवी, जापानी फल इत्यादि कुछ ऐसे उत्पाद हैं जिन्हें सुखाकर भी बेचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी सब्जियां या औषधीय पौधे या उनकी जड़ें हैं जिन्हें पारम्परिक तौर से धूप में सुखाया जाता है जैसे टमाटर, प्याज, ढींगरी मशरूम, आम इत्यादि।

इन उत्पादों को पारम्परिक तौर से सुखाने का नुकसान यह है कि जहां एक ओर इनकी गुणवत्ता बरकरार नहीं रहती है जिस कारण अच्छे दाम नहीं मिल पाते, वहीं दूसरी ओर बंदरों, जंगली जानवरों, पक्षियों, धूल–मिट्टी, कीड़े–मकोड़े तथा खराब मौसम से बचाने के लिए देखभाल करने के अतिरिक्त इन्हें रोज बाहर अन्दर रखना पड़ता है। इसके इलावा इस तरीके से सुखाने में समय भी बहुत लग जाता है और किसानों को अपने दूसरे कामों की कीमत पर इन्हें सुखाना पड़ता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार सामान्यतया 20–25 प्रतिशत फसल तोड़ाई के बाद खराब हो जाती है। 90 प्रतिशत महिलाएं फसल को सुखाने के लिए 1–4 घण्टें प्रतिदिन काम करती है। जो कि सरकार द्वारा निर्धारित 300 रूपये प्रतिदिन के दैनिक वैतन के हिसाब से औसतन 80–100 रूपये प्रतिदिन मेहनत का मूल्य होता है।

इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, बहुत समय से एक ऐसा विकल्प खोजा जा रहा था जिसमें किसानों की आय में बहुत अधिक परिश्रम किये बगैर वृद्धि हो सके। देश में सौर ऊर्जा बहुत मात्रा में उपलब्ध है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के सौर उपकरणों के माध्यम से भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में किया जा रहा है। यह अनुभव किया गया कि इस सौर ऊर्जा का उपयोग फल और सब्जियों को सुखाने में भी किया जा

सकता है। इस उद्देश्य से देश भर में कई प्रकार के सोलर ड्रायर विकसित किये गये। लेकिन इनकी अधिक कीमत, तकनीकी जानकारी एवं इन्हें उपयोग में लाने वाली तकनीक तथा रख–रखाव के अभाव में ये ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय नहीं हो सके। ऐसे ही प्रयासों के परिणामस्वरूप डॉ यशवन्त सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय सोलन द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आसानी से उपयोग में लाये जाने वाला सोलर ड्रायर, भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा प्रायोजित परियोजना के अर्न्तगत, विकसित किया गया है।

सोलर ड्रायर क्या है?

यह एक ऐसा यंत्र है जो कि सूर्य की किरणों द्वारा स्वचलित होता है। सोलर ड्रायर के दो भाग है:

1. हवा गर्म करने वाला कक्ष।
2. पदार्थ सुखाने वाला कक्ष।

१. हवा गर्म करने वाला कक्ष :

यह एक लकड़ी का बॉक्स है जिसके ऊपर 4 मि. मी. मोटा शीशा लगा होता है। इसके माध्यम से सूर्य की किरणें कक्ष में प्रवेश करती है जिससे अन्दर का तापमान बढ़ जाता है। कक्ष का अन्दर का भाग काला कर दिया जाता है। जो सूर्य की किरणों को सोखता है और गर्म हवा हल्की होकर ऊपर की ओर जाती है। इस कक्ष की दक्षता बढ़ाने के लिए बारीक कंकड़ और लोहे के बुरादे के मिश्रण की एक परत नीचे के हिस्से में डाली जाती है इससे दिन के समय तापमान में वृद्धि होती है तथा शाम के समय यह ऊष्मा छोड़ती है। इस प्रकार सुखाने की प्रक्रिया सततः चलती रहती है। इस कक्ष में पंखे द्वारा हवा को छोड़ा तथा नियंत्रित किया जाता है।

२. पदार्थ सुखने वाला कक्ष :

यह कक्ष लकड़ी का बॉक्स है जिसमें लोहे की जाली से बनी तीन ट्रे रखी जाती है। इसमें हवा, हवा गर्म करने वाले कक्ष से प्रवेश करती है जिससे पदार्थ की नमी बाहर आती हो तथा पंखे द्वारा निकासी की जाती है।

इस सौर शुष्कक में पहली बार तापमान को नियंत्रित करने के लिए एक प्रणाली लगाई गई है जो कक्ष में तापमान का बोध कराती है जिससे पंखा चलने से तापमान नियंत्रण में रखा जा सकता है। इस प्रणाली का लाभ यह है कि इसके लगने से सभी प्रकार के उत्पादों को सुखाया जा सकता है।

इस सोलर ड्रायर के निम्नलिखित लाभ है -

1. बाजार में उत्पाद की अधिक कीमत मिलती है।
2. इसमें परम्परागत ढंग से सुखाये जाने के मुकाबले समय की बहुत बचत होती है। इसमें उत्पाद को सुखाने के दौरान बार–बार देखभाल की जरूरत नहीं पड़ती और बचा हुआ समय अन्य उपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है।
3. सोलर ड्रायर में रखे गये उत्पाद को धूल–मिट्टी, कीड़े–मकोड़े, पक्षी, बंदरों एवं जंगली जानवरों से नुकसान नहीं होता है।
4. सोलर ड्रायर बाहर खुली धूप में रखा जाता है तथा इस पर वर्षा से कोई नुकसान नहीं होता है।

5. इसमें सभी प्रकार के फलों तथा सब्जियों को सुखाया जा सकता है।
6. इसे आवश्यकतानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से ले जाया जा सकता है।
7. सुखाये हुए पदार्थ की प्राकृतिक गुणवत्ता बनी रहती है और गुणवत्ता मानकों को पूरा करता है।
8. सौर शुष्कक में सुखाये गए पदार्थों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते है और जीवनावधि ज्यादा होती है।
9. सूखने में लगने वाला समय 35 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।
10. टमाटर व मशरूम ऐसे उत्पाद हैं जो ज्यादा देर तक नहीं टिक सकते, सीजन में इनका कम दाम मिलता है। ऐसी स्थिति में यह गल सड़ कर बेकार हो जाते हैं। सोलर ड्रायर के माध्यम से, कम कीमत के समय टमाटर व मशरूम सुखाकर या पाऊडर बनाकर रखा जा सकता है। जो बाजार में विशेष रूप से उन दिनों जब टमाटर व मशरूम का मूल्य बहुत ज्यादा हो, इसे अच्छी कीमत पर बेचा जा सकता है।

शुष्कक पर लागत -

सोलर ड्रायर वैसे तो आवश्यकतानुसार किसी भी क्षमता का बनाया जा सकता है, लेकिन समान्यतया 25–40 किलोग्राम क्षमता वाला उचित होता है। इस सोलर ड्रायर की कीमत लगभग 50000 रूपये आती है। लेकिन यदि लकड़ी किसान देता है तो इसकी कीमत कम हो जाती है। जहां पर बिजली उपलब्ध न हो वहां पर पंखे को चलाने के लिए सौर बैटरी की कीमत 4000 रूपये अतिरिक्त होगी। ड्रायर को बनाने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा कारीगरों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इससे स्थानीय कारीगरों की आय वृद्धि का साधन उपलब्ध होगा। सौर शुष्कक में पंखे को चलाने के लिए लगभग 5–10 रूपये प्रतिदिन बिजली पर खर्च आयेगा।

सूखे सेब

अनारदाना

टमाटर

सूखे मशरूम

किवी

मिर्च

डॉ० आर० के० अग्रवाल
डॉ० यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
नौंनी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

देसी मधुमक्खी पालन की ''मड-हाईव'' तकनीक

मधुमक्खी पालन कम लागत से अधिक आय वाला व्यवसाय है। इससे मधु तो प्राप्त होता ही है साथ ही साथ फूलों पर इन के आवागमन से परागण भी होता है जिसके फलस्वरूप अनेक फसलों की पैदावार तथा गुणवता में बढौतरी होती है। देसी मधुमक्खी जिसे स्थानीय भाषा में माहू और वैज्ञानिक भाषा में 'एपिस सिराना कहते है, परम्परागत एवं आधुनिक दोनों प्रकार के मौनगृहों में पाली जाती है। प्राकृतिक रूप में यह मधुमक्खी पेड़ों के खोखले तनों, पहाड़ों की दरारों, कच्चे मकानों के खोलों, खाली पेटियों व अल्मारियों आदि में एक से अधिक समानान्तर छत्ते बनाती है। स्वभाव से ही यह मक्खी अपने छत्ते अन्धेरे स्थानों में बनाती है। कुल्लू घाटी व हिमाचल प्रदेश के अन्य पहाड़ी क्षेत्रो में लोग देसी मधुमक्खी को परम्परागत एवं आधुनिक दोनों प्रकार के मौनगृहों में पालते है। परम्परागत मौनगृहों में मुख्यतः ढिंढोर व दीवारी मौनगृह आते हैं। पहाड़ी क्षेत्रो में देसी मधुमक्खी को बचाए रखने में इन परम्परागत मौनगृहों का बहुत बड़ा योगदान है। जबकि आधुनिक मौनगृह लकड़ी का बना एक बक्सा होता है जिस में मधुमक्खियों को आधुनिक ढंग से पाला जाता है। मंहगे होने के साथ–साथ घर छुट की समस्या व मोमी पतंगो का प्रकोप अधिक होता है तथा इनमें अधिक सर्दी व गर्मी में तापमान को बनाऐ रखना भी मधुमक्खियों के लिए कठिन होता है।

बगीचे में स्थित मड हाईव

बगीचे में मड हाईव -

उपरोक्त दोनों प्रकार के मौनगृहों को ध्यान में रखकर एक ऐसा मौनगृह तैयार किया गया है जो कि बहुत ही कम लागत का है और देसी मधुमक्खी पालने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस मौनगृह में आधुनिक व परम्परागत दोनों प्रकार के मौनगृहों के गुण विद्यमान है। इस मौनगृह को कुल्लू घाटी के विभिन्न इलाकों में डॉ० यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय के बागवानी अनुसन्धान केंद्र सेऊबाग द्वारा पिछले सात साल से देखा जा रहा है और अभी तक इसे बहुत ही उपयोगी पाया गया है। किसान विकास समिति, नगवाई इस तकनीक को विज्ञानं एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से "टाईम–लर्न" परियोजना के तहत जिला मंडी के ज्वालापुर क्षेत्र में सेब के बागीचों में प्रयोग में ला रही है। इस परियोजना के तहत 45 किसानों के बागीचों में तकरीबन 100 मड हाइव बनाऐ गये है जो कि सेब की पैदावार बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हो रहे है। इसके साथ–साथ मड हाईव व लकड़ी से बने आधुनिक मौनगृह में मौनगृह के अंदर के तापमान को थर्मामीटर से मापा जा रहा है और दोनों मौनगृहों के अन्दर के तापमान की तुलना की जा रही है। इस अध्ययन

से अभी तक ये पाया गया है कि गर्मी के दिनों में मड हाईव में लकड़ी से बने आधुनिक मौनगृह की तुलना में तापमान औसतन 4–5°C कम व सर्दी के दिनों में विशेषकर रात को औसतन 5–6°C अधिक रहता है। जिस कारण मड हाइव में पुरे साल इस क्षेत्र में मधुमक्खी पालन के लिए लकड़ी से बने आधुनिक मौनगृह की अपेक्षा अधिक अनुकूल रहता है।

इस मौनगृह का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है :

क. बनावट की सामग्री

1.	चिकनी मिट्‌टी	40 किलो (दो बोरे)
2.	ताजा गोबर	5 किलो
3.	गेंहू/धान का भूसां	2 किलो
4.	पत्थर के टुकड़े	10–12 किलो
5.	लकड़ी का बना अंतरपाट का माप	13 इंच चौड़ा 15 इंच लम्बा, जिसके मध्य में 2'' x 2'' काटकर जाली लगाएं।
6.	मौनगृह का ऊपरी छत –	
	लकड़ी का आयताकार फ्रेम	22'' x 24'' ½”
	लोहे के बारीक जाली	22'' x 24'' 3
	लम्बी सूखी घास(छत बनाने के लिए)	4 किलो (तीन चार पूले)
	घास बांधने के लिए लकड़ी का फ्रेम	28''x 1½” x ½” के 9 या 10 फ्रेम
	सुतली/तार	300 ग्राम
	कीलें आधा और पौना इंच	200 ग्राम
	लकड़ी की बनी चौखटें	10 आई0एस0आई0 माप वाले (चित्र 4)
	लकड़ी का बना पटला(डम्मी बोर्ड)	1 आईएसआई माप वाला

ख. मौनगृह के शिशु कक्ष का माप

बाहरी माप	22" x 24" x 13" (चौ0 xल0 xऊँ)
आंतरिक माप शिशु कक्ष	13" x15" x9" (चौ0 xल0 xऊँ)
दीवार की मोटाई	4½”
ऊपरी छत की ऊंचाई	7½”
ऊपरी छत का तिरछा पल्ला	23½” x 25"

उपरोक्त मौनगृह पत्थरों के चबूतरे (25"x25"x12") पर बनाया जाता है। जहां सीमेंट उपलब्ध न हो तो प्लेटफॉर्म की जगह लकड़ी के तख्ते (26"x26"x1½") का प्रयोग कर उसे लकड़ी के मजबूत स्टैंड पर रखकर इस मौनगृह को बनाया जाता है।

ग. बनाने की विधि :

यह मौनगृह पत्थरों से बने 25"x25"x12" चबूतरे (Platform) पर बनाया जाता है। इस चबूतरे के चारों ओर चिकनी मिट्टी व गोबर के लेप से लिपाई की जाती है तथा जमींन की सतह पर चींटिया की रोक के लिए सीमेंट की 2" चौड़ी व 3" ऊँची नाली बनाई जाती है। चबूतरा तैयार करने के पश्चात चिकनी मिट्टी, गोबर व भूसे को मिलाकर उसमें आवश्यकतानुसार पानी डालकर गीला करके रात भर भीगने दिया जाता है। इसके पश्चात इस गीले मिश्रण को अच्छी प्रकार मिलाकर गारा तैयार किया जाता है। यह गारा न तो ज्यादा पतला और न ही अधिक सख्त होना चाहिए। इसके बाद पत्थरों से बने चबूतरे पर लोहे या लकड़ी से बना शिशु कक्ष के आकार का आयताकार सांचा (Block) रखा जाता है। जिसके अन्दर व बाहर की दीवारों के बीच 4½ इंच खाली जगह होती है सांचे की इस खाली जगह को उपरोक्त ढंग से बनाए गए गारे ओर पत्थरों के मिश्रण से भर दिया जाता है। गारा और पत्थरों को भरते समय मधुमक्खियों के प्रवेश की जगह एक लकड़ी का गुटका (3"x2"x1") रख दिया जाता है। उसी प्रकार मौनगृह की पिछली दीवार में हवा के आवागमन के लिए जो जगह रखी जाती है वहां भी लकड़ी का गुटका (4½"x4"x4") नीचे तल से 4" ऊपर दीवार के मध्य में रख दिया जाता है। इस प्रकार सांचे को भरने के लिए 3–4 दिन के उपरान्त इसे खोल दिया जाता है तथा लकड़ी के टुकडों को भी हटा दिया जाता है। सांचा खुलने के बाद पत्थरों के चबूतरे के ऊपर मिट्टी व पत्थर के टुकडों से बना शिशु कक्ष का ढांचा रह जाता है। इसके अन्दर की दोनों लम्बी दीवारों (प्रवेश वाली व उसके सामने वाली दीवार) पर तल से 9" ऊँचाई तक आधा इंच मोटी गारे की तह चढाई जाती है जिसके ऊपर (सूखने के बाद) लकड़ी की आई०एस०आई० माप की चौखटे रखी जाती है। मिट्टी की यह तह चढ़ाते समय पिछली दीवार में लकड़ी के गुटके को हटाने के बाद बने 4"x4" छेद के ऊपर इसी माप की लोहे की जाली (Wire gauge) लगा दी जाती है। इसी तरह लकड़ी के गुटके को हटाकर बने प्रवेश की भी मरम्मत कर लिपाई की जाती है। इसके पश्चात कुछ दिन सूखने के बाद इस मौनगृह की दीवारों पर अन्दर और बाहर दोनों तरफ मिट्टी, गोबर व भूसे के मिश्रण से बने पतले गारे से लिपाई की जाती है। कुछ दिन सूखने के बाद शिशु कक्ष के तल व दीवारों पर गोबर से अंतिम लिपाई की जाती है। इस प्रकार मौनगृह का शिशु कक्ष तैयार हो जाता है। इस प्रकार तैयार किये गए शिशु कक्ष में 'एपिस सिराना' की 12 चौंखटे रखी जा सकती है। शिशुकक्ष में मधुमक्खियां स्थानंत्रित करने से पूर्व यह निश्चित किया जाता है कि शिशुकक्ष के तल तथा दीवारों में किसी प्रकार की दरारें न रह पाएं। जंहा कहीं दरारें दिखाई दे उन्हें गोबर व मिट्टी के बारीक लेप से भर दिया जाता है। जब यह शिशुकक्ष अच्छी प्रकार सूख जाए तब इसमें मधुमक्खियां स्थानंत्रित कर सकते है या इसके अन्दर छताधार लगाकर आई०एस०आई० माप की चौखटे रख देते है और फिर कहीं से भी गणछूट के समय मधुमक्खियां पकड़कर इसमें डाल देते है। मक्खियां डालने के उपरान्त इन पर लकड़ी के आधुनिक मौनगृह की तरह ऊपर से बोरी का टुकड़ा रखने के पश्चात अन्दरपट रख देते है और अंत में लकड़ी घास व लोहे की जाली बनाये गए ऊपरी छत से इसे ढक देते है यह किसी भी प्रकार की छत हो सकता है।

मड हाईव को बनाना

मड हाईव में मधुमक्खियों को डालना

यह मौनगृह आधुनिक व परम्परागत दोनों प्रकार के मौनगृहों के गुणों से युक्त है क्योंकि इसमें मधुमक्खियां आई0एस0आई माप की चौखटों पर पाली जाती है। आवश्यकता पड़ने पर मधुमक्खियों को लकड़ी के बने आधुनिक मौनगृहों में डालकर वांछित जगह पर ले जाया जा सकता है। इस मौनगृह में मौनवंशो का निरीक्षण, मधुनिष्कासन व अन्य सभी कार्य आधुनिक मौनगृह की तरह किये जा सकते है। इस मौनगृह की 4½ इंच मोटी दीवारें मिट्टी, गोबर, भूसे व पत्थरों से बनी होने के कारण इनमें परम्परागत मौनगृहों के गुण विद्यमान होते है जिससे मक्खियां इन्हें बहुत पसंद करती है।

यदि हर बागवान व किसान अपने आंगन, खेत, बगीचे में 2–3 ऐसे मौनगृह बना लें तो इस लुप्त हो रही मधुमक्खी का संरक्षण होगा, परपरागण की समस्या जिसके लिए बागवानों को हर साल हजारों रूपए खर्च कर मधुमक्खियां किराए पर रखनी पड़ती है, उससे राहत मिलेगी तथा शहद, मोम व मक्खियां बेचने से उनकी आय भी बढ़ेगी।

फायदे :

1) लकड़ी के बक्सों की अपेक्षा मधुमक्खियों की संख्या में प्रतिवर्ष दो से तीन गुणा वृद्धि होती है।
2) शत्रुओं (विशेषकर मोमी पतंगा) व घरछूट की समस्या नहीं आती।
3) रानी पूरे साल अंडे देती है क्योंकि इस मौनगृह के अंदर का तापमान लकड़ी से बने आधुनिक मौनगृह की अपेक्षा सर्दियों में 3–4 डिग्री सेंटीग्रेट अधिक व गर्मियों में 6–8 डिग्री सेंटीग्रेट कम रहता है इसलिए मधुमक्खियों को मौनगृह के अंदर तापमान बनाए रखने में अधिक ऊर्जा नष्ट नहीं करनी पड़ती।
4) इस मौनगृह को बनाने की अधिकतर सामग्री किसान के पास निःशुल्क उपलब्ध होती है इसलिए इसकी लागत बहुत कम होती है।
5) किसान बागवान इसे स्वयं बना सकते है।

मौनगृह की लागत :

इस मौनगृह को बनाने का अधिकतर सामान जेसे चिकनी मिट्टी, गोबर, गेंहू/धान का भूसा, पत्थरों के टुकड़ें, अंतरपट बनाने के लिए लकड़ी तथा ऊपरी छत बनाने का अधिकतर सामान किसान बागवान के पास मुफ्त में उपलब्ध होता है। कुछ एक चीजें जैसे लकड़ी की बनी चोखटे, डम्मी बोर्ड, अंतरपट के लिए लकड़ी का फट्टा, लोहे की बारीक जाली, एक तसला सीमेंट, सूतली/तार और कुछ कीलों को खरीदनें की आवश्यकता होती है जिनकी कीमत कुल मिलाकर लगभग 500 रुपये तक होती है। इस प्रकार इस मौनगृह की लागत लकड़ी के बने आधुनिक बक्से की अपेक्षा एक तिहाई होती है तथा फायदे कई गुणा ज्यादा होते है।

संस्था के केन्द्र में तीन प्रकार के मड हाईव

भोपिंदर मेहता
(प्रभारी वैज्ञानिक)
तकनीकी एवं विकास समिति,
मलोरी, डा. बैहना, तै.सदर, जिला मंडी, हि.प्र.
फोन न. 01905–246154, 155, 209494, 09459873461
ई–मेल : stdpsn@yahoo.com, stdmandi@gmail.com
वैबसाईट : http//www.stdruraltech.org

हिमालय क्षेत्र की भोजन सुरक्षा में पंरपरागत फसलों का योगदान

विकास की अंधी दौड़ में शहर ज्यों–ज्यों गाँवों की ओर कदम बढ़ाते जा रहे हैं, खेती की जमीन घटती जा रही है। साथ ही, कंक्रीट के जंगल खेतों को ही नहीं, हरे–भरे जंगलों को भी लीलते जा रहे हैं। इसकी फिक्र न विकास के झंडाबरदारों को हैं, न राजनेताओं को, न नीति–निर्धारकों को और न आज की आपाधापी में फटाफट बनने वाला फास्टफूड खाने वाली पीढ़ी को पता है कि गायब होते खेतों और खेती को खो रही जमीन का क्या अर्थ है।

रामदाना की खेती

पहाड़ों में बहुउद्देशीय फसलें

कौदा या मंडुआ की खेती

आज देश में चारों ओर वैज्ञानिकों द्वारा तैयार की गई अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों का बोलबाला है। फसलों की संकर और संकुल किस्में ही नहीं, बल्कि आनुवांशिक हेर–फेर से तैयार यानी जी एम फसलें भी किसानों के पास पहुँच चुकी हैं। सवाल यह भी है कि जब भरपूर उपज देने वाली उन्नत किस्में मौजूद हैं, तो वैकल्पिक और अपंरपरागत फसलों की जरूरत ही क्या है छोटी जोत वाले किसानों से अगर यह सवाल पूछा जाए, तो शयद सही जवाब मिल सकता है। असल में उन्नत किस्मों की अपनी कुछ जरूरतें हैं। वे अच्छी उपज तभी दे सकती हैं, जब उन्हें भरपूर उर्वरक, सिंचाई और कीट तथा रोगनाशक दवाईयों तथा खरपतवारनाशकों से सूरक्षा मिले। छोटी जोत वाले किसानों के लिए उन किस्मों का महँगा बीज खरीदने से लेकर उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों तक का खर्च उठाना मुमकिन नहीं होता। साथ ही उन्हें कम ज़मीन से अधिक से अधिक पैदावार मिल जाती हैं।

वैज्ञानिकों ने प्रकृति की नकल करकें, अलग–अलग प्रजातियों में कृत्रिम रूप से परागण करके आपस में उनके ब्याह रचाए और नई, उन्नत किस्में तैयार कीं। इस तरह सभी पौधों में एक–समान जीन यानी गुण होने के कारण पूरी फसल एकसार होती है– बाहर से भी और अंदर से भी। ऐसी नई उन्नत किस्में अधिक उपज तो देती हैं, लेकिन गुणों में एकसार होने के कारण उन पर किसी बीमारी या कीट का प्रकोप भी एक साथ होने का खतरा रहता है। साथ ही, लगातार नई किस्में तैयार होने और किसानों तक पहुँचने के कारण वे पुरानी देशी और जंगली प्रजातियाँ पीछे छूट जाती हैं, जिनसे नई किस्मों को अधिक उपज देने, सूखा सहने या रोगों–कीटों को सहने के गुण मिलते हैं। अब अगर कभी नई उन्नत किस्म किसी कारण फेल हो जाए, तो किसान क्या करेंगें? तब उन फसलों की तलाश शुरू होगी, जिनके मेल से पीढ़ी–दर–पीढ़ी नई उन्नत किस्में तैयार हुई।

इसलिए उन बीजों को बचाने के लिए समर्पित सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और किसानों को हम धन्यवाद देते हैं, जो हमारी अपनी देशी, पंरपरागत फसलों की विरासत को बचा रहे हैं। 1980 के दशक में उत्तराखण्ड के प्रसून, विजय जड़धारी, धूमसिंह नेगी जैसे जमीन से जूड़े कार्यकत्तओं के दल ने पंरपारागत बीजों को बचाने के लिए 'बीज बचाओ आंदोलन' की शूरूआत की। वे अब तक धान की 350, मँडुवा (कोदो) की 12, झंगोरा की 8, कौंणी की 3, चीणा की 2, रामदाना की 3, राजमा की 220, लोबिया की 8, गहत (कुलथी) की 4, भट (देशी सोयाबीन) की 4 और कई अन्य स्थानीय फसलों की अनेक प्रजातियों के बीजों का संरक्षण कर चूके हैं। सरकारी स्तर पर भारत में नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज (एन० बी० पी० जी० आर०) हजारों देशज प्रजातियों के बीजों का मध्य व दीर्घकालीन संरक्षण कर रहा है।

कुलत दाल की खेती

राज़मा दाल

महिलाओं द्वारा खेती

यहाँ यह जानना भी हमारे लिए महत्तवपूर्ण होगा कि हमारी तमाम फसलों में दो तरह की प्रजातियाँ हैं एक वे, जो यहीं पैदा हुई और दूसरी वे जो विदेशों से हमारे देश में आई। जिन फसलों का जन्म हमारे देश में ही हुआ यानी जो हमारी देशज फसलें हैं, वे हैं–

अनाज – धान, कोदो, कुटकी, रैशण

दलहन – अरहर, कुलथी (गहत), उड़द, मूंग

तिलहन – सरसों, राई, तिल

सब्जियाँ –चौलाई, बैंगन, खीरा, करेला, मूली, सेंगरी, लौकी, सतपुतिया, पालक, चिचिंडा, पोई आदि

कंद – टारो, कचालू, अरबी, गेढी, याम, तरूड़, जिमीकंद, अदरक

फल – कटहल, ताड़, जामुन, कैथ(कठबेल), आम, केला, आंवला

मसाले – हल्दी, कालीमिर्च, छोटी इलाइची

शर्करा – गन्ना

रेशा – पटसन, सन, कपास, भीमल, आदि।

अन्य फसलें जैसें चौलाई ऊँचे पहाड़ी इलाकों की फसल है, जो हरी सब्जी के काम तो आती ही है, इसकी बालियों से रामदाना मिलता है जो अपने आप में संपूर्ण भोजन है। ऊँचे पहाड़ की एक और प्रमुख फसल है, फाफरा या ओगल, जिसकी हरी सब्जीं बनती है व आटा शहरों में कुट्टु कहलाता है। वहाँ के

ताजे पानी के बहते छोटे गाद–गदेरों के किनारे लिंगुड़ फर्न उगते हैं, जिनकी बहुत स्वादिष्ट सब्जी बनती है। वहाँ बहुतायत से उगने वाली बिच्छूबूटी से भी पौष्टिक सब्जी और सूप बनता है। सिक्किम का लोकप्रिय नेटल सूप इसी बिच्छूबूटी की हरी पत्तियों से बनता है। कई अपंरपरागत दालों की भी खेती की जा सकती है जैसे – राइस बीन, पंखिया सेम, बाकला, रैंस वगैंरह। पोई एक पौष्टिक सब्जी है। वहीं पिछली कई सदियों में विदेशियों यानी पुर्तगालियों, मुगलों, स्पेनी, अग्रेंजी आदि के साथ कई फसलें और शोभकारी पेड़–पौधे हमारे देश में आए और यहीं के होकर रह गए। ऐसी कुछ फसलें हैं– आलू, शकरकंद, टमाटर, सेम, प्याज, अदरक, मिर्च, मसूर, मक्का, सेब, नाशपाती, अनानास, आड़ू, अंगूर, बादाम, खजूर आदि। लोंग, धनिया, सौंफ, जीरा शायद अरब के सौदागरों के साथ आया ऐसा माना जाता है।

दुनिया भर में आज लगभग 20 फसलों से 90 प्रतिशत भोजन मिल रहा है। इसमें से भी आधी आपूर्ति केवल धान, गेहूँ और मक्का से हो रही है। यदि इन फसलों पर कभी कोई संकट आ जाए, तो कल लोग क्या खाएँगे? इसीलिए पुरानी परंपरागत फसलों, उनकी जंगली रिश्तेदार प्रजातियों और गैर परंपरागत फसलों पर ध्यान देना और इनका संरक्षण करना बेहद जरूरी है।

बाकला

लौकी

चचिंडा

औवा जो

लिंगडा

तौरी

इसी कारण हमें खाद्य सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अपंरपरागत फसलों को भी बढ़ावा देना ज़रूरी है, ताकि किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में भोजन की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

हिमालय क्षेत्र की कृषि–जैवविविधता

क्र0	पौधे का लैटिन नाम/Latin name	पौधे का सामान्य – स्थानिय नाम	उगने की सामान्य ऊंचाई (मी0–समुद्र तल से)
	अनाज		
1	**हर्डिएम हिलायनेंस /** *Hordeum himalayense*	ओवा जौ	1000 मी0 तक
2	हर्डिएम वल्गेर / *Hordeum vulgare*	जौ	1000 मी0 तक
3	औरेजा सैटिवा / *Oryza sativa*	धान	2300 मी0 तक
4	ट्रिट्रिकम एस्टीवम/ *Triticum aestivum*	गेहूं	3400 मी0 तक
5	ज़िया मेस / *Zea mays*	मक्का, मुंगरी	2000 मी0 तक
	मोटा अनाज		
1	ईचिनोक्लोआ फ्रमेन्टेसिया / *Echinochloa frumentaacea*	झंगोरा	2000 मी0 तक
2	एउयसिन कोराकन/ *Eleusine coracana*	कोदा	2000 मी0 तक
3	फागपीरम एस्कुलेन्टम/ *Fagopyrum esculentum*	औगल, कौटू	खेती
4	फैगोपीरम टेट्रिकम/ *Fagopyrum tataricum*	फापड़, कौटू	2000–2400 मी0 तक
5	पैनिकम मिलिअकम/ *Panicum miliacum*	चीना	1000 मी0 तक
6	पेनेसेटम टाइफाओइड्स/ *Penisetum typhoides*	बाजरा	2000 मी0 तक
7	सेटरिया इटालिका/ *Setaria etalica*	कौनी,	2000 मी0 तक
	दाल		
1	कैजोनस कैजान/ *Cajanus cajan*	अरहर, थोहड, तोर	1200 मी0 तक
2	कैनाविल्या ग्लैडीएटी/ *Canavalia gladiate*	सेम	1500 मी0 तक
3	सीसर एआरिएटिनम/ *Cicer arietinum*	चना,	1500 मी0 तक
4	ग्लाइसिन मैक्स/ *Glycine max*	सोयाबीन	500–1500 मी0 तक
5	फ्रग्लाइसीन सोजा/ *Glycine soja*	कालाभट्ट	500–1500 मी0 तक
6	लेंस कूलिनारिस/ *Lens culinaris*	मसूर	1500 मी0 तक
7	फैसोलुस लूनाटस/ *Phaseolus lunatus*	विलाईती सेम	1600 मी0 तक
8	फैसोलुस वल्गरिस/ *Phaseolus vulgaris*	क्षेमी, राज़मा	3000 मी0 तक
9	विगना फैबा/ *Vigna faba*	ब़ाकला	1500 मी0 तक
10	विगना एनाइटीफोलियम/ *Vigna aconitifolium*	भृंगा	2000 मी0 तक
11	विगना आकुलारी/ *Vigna angularis*	रेंस	2000 मी0 तक
12	विगना मुन्गो/ *Vigna mungo*	उड़द	3000 मी0 तक
13	विगना रेडिएट/ *Vigna radiate*	मूंग	1200 मी0 तक
14	विगना उंबलेटे/ *Vigna umbellate*	गुरूं रंस	1500 मी0 तक

मसालें

1	ब्रैसिका निग्रा/ *Brassica nigra*	काली राई	2200 मी0 तक
2	क्लेम विस्कोस/ *Cleome viscose*	जखीया़	1000–2500 मी0 तक
3	कॉरडरम सटेविम/ *Corandrum sativum*	धनिया़	2200 मी0 तक
4	कर्कुमा डोमेस्टिका/ *Corandrum domestica*	हल्दी	2200 मी0 तक
5	कैप्सिकम ऐन्नम / *Capsicum annuum*	मिर्च	2200 मी0 तक
6	ज़िंगाबेर ऑफीशीनले / *Zingiber officinale*	अदरक	1500 मी0 तक

सब्जियाँ

1	एबिलमोशस एस्कलेंटस/ *Abeimoschus esculentus*	भिंडी	2000 मी0 तक
2	एलियम कैरोलिनियम/ *Allium carolinianum*	धून, लदम	2500 मी0 तक
3	एलियम सेपा/ *Allium cepa*	प्याज	2000 मी0 तक
4	एलियम सैटिवुम/ *Allium sativum*	लेहसून	2500 मी0 तक
5	एमरांथुस फ्रेमेमेन्टियस/ *Amaranthus frumentaceus*	च्यावा, मारछा	2800 मी0 तक
6	एमरांथुस ओलेररेसा/ *Amaranthus oleracea*	चौलाई	2000 मी0 तक
7	एम्मोरफोफल्लस कैम्पानुलाटस/ *Amorphophallus campanulatus*	जिमीकंद	1000 मी0 तक
8	ब्रैसिका ओलेरैसाय वेर0 बॉट्राईटिस/ *Brassica oleracea var. botrytis*	फूलगोभी	1500 मी0 तक
9	ब्रैसिका ओलेरराासा वेर0 कैपिटाटा/ *Brassica oleracea var. capitata*	बंदगोभी, पत्तागोभी	2500 मी0 तक
10	ब्रैसिका ओलेररेसा वेर0 गैंगसिलॉड्स/ *Brassica oleracea var. gongylodes*	गाँठगोभी	1000 मी0 तक
11	ब्रैसिका रैपा / *Brassica rapa*	शल्जम	1000 मी0 तक
12	चेनोपोडियम एल्बम/ *Chenopodium album*	बथुआ, चौराँई	1500–3500 मी0 तक
13	कोलोकैसिया एस्कलेंटा/ *Colocasia esculenta*	घुईयाँ	1500 मी0 तक
14	कोलोकैसिआ हिअल्लेंसिस / *Colocasia himalensis*	तरो	500–2000 मी0 तक
15	कुकूरबिटा मैक्सिमा/ *Cucurbita maxima*	कद्दू	1500 मी0 तक
16	कूकुमा सैटिवास/ *Cucumis sativus*	खीरा	2200 मी0 तक
17	साइक्लेन्थेरा पेडाटा/ *Cyclanthera pedata*	मीठा करेला, कुन्दरू	1500 मी0 तक
18	डकस कैरेटा वेर0 सैटिवा/ *Daucus carota var. sativa*	गाज़र	600 मी0 तक
19	आईपोमोए बटाटा/ *Ipomoea batata*	शकरकंद	1000 मी0 तक
20	लेगेनेरिया सिसरिया/ *Lagenaria siceraria*	लौकी, तुमरी	2200 मी0 तक
21	लफा एट्यूटांगुला/ *Luffa acutangula*	तौरी,	2200 मी0 तक

22	लफा एज़िप्टिका / *Luffa aegyptica*	घीया तौरी	2000 मी0 तक
23	मोमोर्डिका चार्न्तिया/ *Momordica charantia*	करेला	2500 मी0 तक
24	पाइज़म अर्वेनस/ *Pisum arvense*	कोंग, गोली	1800 मी0 तक
25	पाइज़म सैटिवुम/ *Pisum sativum*	मटर	2000 मी0 तक
26	राफनस सैटिवुम/ *Raphanus sativum*	मूली	3000 मी0 तक
27	सोलनम मेलेगेंना/ *Solanum melongena*	बैंगन	2200 मी0 तक
28	सोलनम ट्सूबरोसम/ *Solanum tuberosum*	आलू	1500–3500 मी0 तक
29	स्पिनसेआ ओलेरेसाइए / *Spinacea oleracea*	पालक	1500 मी0 तक
30	त्रिकोसेंथेस एंजुइना/ *Trichosanthes anguina*	चीचिंडा	2000 मी0 तक
31	टीरिकोसेंट्स डाइका/ *Tricosanthes dioca*	परवल	500 मी0 तक
32	ड्राइगोनेला फेनियम–ग्रीकम / *Trigonella foenum-graecum*	मैथी	2000 मी0 तक

बहुउद्देशीय फसलें

1	ब्रासिका कंम्पैस्ट्रिस वेर0 तोरिया/ *Brassica compestris var. toria*	पीली सरसों	2200 मी0 तक
2	ब्रैसिका जूनसीआ / *Brassica juncea subsp. Juncea*	राई	2200 मी0 तक
3	ब्रैसिका नेपस वर् नापस/ *Brassica nepus var napus*	सरसों, तोड़िया	2200 मी0 तक
4	पैपर सोन्निफेरम/ *Papavar somniferum*	पॉपी, पॉस्ट	जोता हुआ
5	कैनाबिस सैटिवा/ *Cannabis sativa*	भांग	2200 मी0 तक
6	हिबिस्कस कैनाबिनुस/ *Hibiscus cannabinus*	पटसों, मेंस्ता	1500 मी0 तक
7	मेन्था अर्वेनसिस/ *Mentha arvensis*	जंगली पौधीना	1200 मी0 तक
8	मेन्था पिफराता/ *Mentha piperata*	विलाईती पौधीना	1500 मी0 तक
9	मन्था वियरिडिस/ *Mentha viridis*	पहाड़ी पौधीना	1500 मी0 तक
10	निकोटियाना रस्टीका / *Nicotiana rustica*	पहाड़ी तबांकू	1000 मी0 तक
12	पेरिला फ्रूटसेन्स/ *Perilla frutescens*	भंगीर, भांगज़ीरा	500–1800 मी0 तक
13	सैकुरम ऑफिसिनारम/ *Saccharum officinarum*	गन्ना	1500 मी0 तक
14	सेसमम इंडिकॉम/ *Sesamum indicum*	तिल	1500 मी0 तक
15	टिनोस्पोरा कॉर्डिफ़ोलिया / *Tinospora cordifolia*	गिलौई	1500 मी0 तक

कौनी

जखीयां

फापड़

झंगोरा

ओगल

काला भट्ट

जिमीकंद

गैंढी

चीना

डा0 सुभाष नौटियाल, डा0 राकेश कुमार, डा0 किरन नेगी एवं इं0 प्रशांत कुमार शर्मा,

हैस्को, देहरादून, उत्तराखण्ड

सब्जियों का उत्पादन दोगुना करने के लिए नर्सरी (पौधशाला) विकसित करना

गुणात्मक व मात्रात्मक आहार वास्तव में स्वस्थ पौधों से ही पैदा किया जा सकता है, ऐसे पौधे जो केवल तभी उत्पन्न होते हैं जब उनकी पौध शक्तिशाली व स्वस्थ हों। किसी भी फसल की ज्यादा व गुणात्मक पैदावार के लिए अच्छी किस्म की पौध का उत्पादन नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार नर्सरियों में उत्पादित पौधों, कन्दों (bulb), राईजोम्स (rhizome), चूषकों (sucker) व कलमों (graft) की भारी मांग है। परिणामतः नर्सरी बागवानी की मूलभूत जरूरत है। सब्जियों की नर्सरी एक ऐसी जगह अथवा प्रतिष्ठान है जहाँ सब्जियों की नन्ही पौधों की देखरेख व उन्हें उन्नत बनाने के लिये उन पर तब तक काम किया जाता है जब तक वो स्थायी रूप से रोपण के लिए तैयार नहीं हो जातीं।

हमें नर्सरी की आवश्यकता क्यों है ?

कुछ सब्जियों को उनके आरम्भिक उत्पत्ति काल में विशेष ध्यान की जरूरत होती है। कुछ ऐसी सब्जियां हैं जिनका बीज बहुत छोटा होता है। बेहतर देख भाल के लिये और जमीन तैयार होने में लगने वाले समय से निपटने के लिए, इन्हें पहले नर्सरी में उगाया जाता है और बीज बोने के करीब एक महीने बाद मुख्य खेत में प्रतिरोपित किया जाता है। ये कुछ सब्जियां इस प्रकार हैं : टमाटर, बैंगन, मिर्ची, शिमला मिर्च, फूल गोभी, बन्द गोभी, नोल–खोल, चीनी गोभी, चोकी गोभी, ब्रोक्कोली, कासनी, चिकरी(लाल व हरी), अजवाईन, करम साग (kale)।

सब्जियों के उत्पादन में नर्सरी विकसित करने के लाभ -

- नाजुक पौध की देख भाल सुविधाजनक हो जाती है।
- उत्पत्ति के लिए अनुकूल हालात उपलब्ध कराना सम्भव होता है – जैसे अंकुरण व साथ में विकास भी।
- दुःसाध्य मिट्टी से सम्बंधित समस्याओं को मिटाने में मदद मिलती है।
- खरपतवार नियंत्रण सरल हो जाता है।
- खेत प्रबंधन की लागत को कम करता है।
- भूमि व मजदूरी दोनों ही की बचत होगी क्योंकि मुख्य खेत में फसल 1 महीने बाद लगायी जाती है जिससे फसल का ज्यादा से ज्यादा सघन आवर्तन किया जा सकता है।
- नर्सरी में विकसित फसल जल्दी तैयार हो जाती है व बाजार में उसके अच्छे दाम मिलते हैं इसलिए आर्थिक रूप से यह ज्यादा लाभदायक है। .
- हाइब्रिड बीजों का इष्टतम उपयोग।
- छोटी पैदावार की अवधि और भूमि का ज्यादा प्रभावशाली उपयोग।
- फसल काटने की तिथि की ज्यादा सटीक भविष्यवाणी।

जगह का चयन -

नर्सरी के लिए जगह का चयन करते समय कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को सोच लेना चाहिए –

- मिट्टी अच्छे से शुष्क, झरझरी(Porous) व गठाव में हल्की से मद्दम होनी चाहिए। मिट्टी का pH 6.5 से 7.5 होना चाहिए।
- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्र में होने चाहिए। मिट्टी की गहराई 15–25 cm हो तो अच्छा रहेगा।
- मिट्टी का गठन ना ज्यादा खराब और ना ही ज्यादा महीन होना चाहिए।
- नर्सरी में पौधे लगाने से पहले पवन अवरोध व आश्रय पट्टीयों की व्यवस्था करनी चाहिए।
- नर्सरी जल आपूर्ति के निकट होनी चाहिए ताकि सिंचाई आसानी से की जा सके।
- मिट्टी में एक उचित मात्रा में पानी को रोक कर रखने की क्षमता होनी चाहिए।
- बिजली की नियमित आपूर्ति भी अतिआवश्यक है।
- नर्सरी की जगह पालतू व जंगली जानवरों से अच्छी तरह सुरक्षित होनी चाहिए।
- वहां सड़क व परिवहन की अच्छी सुविधा होनी चाहिए।
- एक आदर्श नर्सरी में कम से कम एक सुप्रबंधित ऑफिस होना चाहिए और यह घर के नजदीक होनी चाहिए।
- सामन्यतः नर्सरी की जगह अंशतः छायादार होनी चाहिए जैसे पेड़ों से घिरी हुई। यदि नहीं तो कृत्रिम छाया की व्यवस्था करनी चाहिए।

बीज व पौध जगह के लिए अपेक्षित जरूरते :

बीज व पौध के लिए जगह की जरूरत मिट्टी, फसल, मौसम व नर्सरी विकसित करने की पद्धति के अनुसार बदल सकती है। इसका विवरण नीचे दिया गया है:

सब्जियां	बीज की दर (ग्राम)	जरूरी क्षेत्रफल (cm^2)
टमाटर (हाइब्रिड)	200 – 250	75×100
टमाटर (ओपी)	400 – 500	100×125
बैंगन	400 – 500	75×100
मिर्ची	500– 600	75×100
शिमला मिर्च	400 – 600	100×150
आरम्भिक अवस्था फूल	700 – 750	100×150
मध्यम अवस्था फूल	400– 500	100×150
बन्द गोभी	450 – 500	75×100
नोल–खोल	700 – 750	100×150
प्याज	800 – 1000	100×150

बीज की गुणवत्ता :

- बीज उपयुक्त किस्म का होना चाहिए, जिसे विकसित किया जाना हों।
- बीज साफ होने चाहियें और अन्य बीजों के मिलावट से मुक्त हों।

- बीज परिपक्व हो, सुविकसित हों व आकार में अच्छे हों।
- बीज ज्यादा पुराने होने के लक्षण व बुरे रख–रखाव से मुक्त हो ।
- बीज में उच्च अंकुरण क्षमता होनी चाहिए।

कुछ महत्वपूर्ण पौध प्रजातियों के लिए उत् ट रोपण सामग्री के मापदण्ड :

सब्जियां	संचरण विधि	उत् टता के मापदण्ड
ब्रोकोली	बीज	4–6 सप्ताह पुराना
बन्द गोभी/फूल गोभी	बीज	3–5 सप्ताह पुरानी पौध
प्याज	बीज	6–8 सप्ताह पुरानी, 20–25 cm ऊंची
टमाटर	बीज	3–4 सप्ताह पुरानी, 12–15 cm ऊंची, 4–6 पत्ती उगने की अवस्था

नर्सरी तल निर्माण (Bed preparation)

- नर्सरी में क्यारी का निर्माण मौसम व फसल के अनुसार होना चाहिए।
- बरसात के मौसम में उभार वाली क्यारी बनाई जाती है लेकिन सर्दियों व गर्मियों के मौसम में समतल क्यारी ही बनानी चाहिए। इसी तरह रबी और प्याज के मौसम में समतल क्यारी ही चाहिए। एकरूपता व अंकुरण के अच्छे प्रतिषत के लिए मिट्टी पर्याप्त रूप से बारिक व नम होनी चाहिए।
- प्रतिकूल वातावरण जैसे हालात में पौध को डिब्बे में तैयार करना चाहिए, इनके लिए फूल दान, पोलीथीन बैग, मटकीनुमा प्लग, लकड़ी की ट्रे, मिट्टी के बर्तन आदि प्रयोग किये जा सकते है। 1:1:1 अनुपात में मिट्टी, रेत व अच्छी तरह से अपघटित एफ व्हाई एम् / पत्तों की खाद का मिश्रण बनायें और इस मिश्रण को उन पात्रों में भर दें जिनमें पौध लगानी है। इन पात्रों में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए ताकि अतिरिक्त पानी बह सके जैसे पात्रों के तल में छेद कर दें।

उभरे हुए नर्सरी तल :

- क्यारी की लम्बाई 3 से 5 मीटर रखी जा सकती है, जबकि चौड़ाई 1 मीटर तक ही रखी जाये जिससे अंतरसंवर्धन क्रिया संभव हो सके।
- क्यारियों को जमीन से 15 से 20 से.मी. ऊंचा रखा जाता है। दो क्यारियों के बीच 30–40 से.मी. का अन्तर रखा जाता है।
- दो क्यारियों के बीच का अन्तर खरपतवार हटाने में, नर्सरी की बीमारी और कीट पतंगों से सुरक्षा करने में और नर्सरी की क्यारियों से अतिरिक्त पानी बाहर निकालने में मदद करता है।
- क्यारियों/तलों की संख्या विशेष फसल, मौसम व क्षेत्र पर निर्भर करती है।
- क्यारियाँ/तल पूर्व और पश्चिम दिशा में बनायी जानी चाहियें और क्यारियों पर रेखायें उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर बनानी चाहियें।

नर्सरी के पौधों के संचरण के लिए माध्यम :

बहुत से पदार्थ और कई पदार्थों का संयोजन बीज अंकुरण, कलम रोपित करने के माध्यम के रूप में उपलब्ध हैं। एक अच्छे संचरण माध्यम में निम्न विशेषताएं होती हैं –

- रोपण व अंकुरण के समय कलम अथवा बीज को रोके रखने के लिए यह सख्त व घना होना चाहिए।
- इसमें आर्द्रता को रोके रखने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए।
- यह पर्याप्त रूप से झरझरा होना चाहिए ताकि अतिरिक्त पानी बाहर बह सके और उचित वायु संचारण का रास्ता बने।
- यह खरपतवार बीज, सूत्र कृमी व रोगाणुओ से मुक्त होना चाहिए।

मिट्टी का मिश्रण :

गमले वाले पौधों के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला यह सामान्य माध्यम है। इसमें सामान्यतः लाल रेत, अच्छी तरह से अपघटित जानवरों के अवशेष की खाद, पत्तियों की खाद, नदी की बालू और कुछ मामलों में चारकोल, भी शामिल होते हैं ।

संचरण के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला मिट्टी का मिश्रण इस प्रकार है –

लाल मिट्टी – 2 भाग

एफ व्हाई एम – 1 भाग

बालू – 1 भाग

बालू – कलम रोपण के लिए यह सबसे संतोष जनक माध्यम है।

पीट – यह एक प्रकार की वनस्पति है जिसमे जलीय और दलदलीय वनस्पति के अवषेश होते हैं जो पानी के अन्दर विघटित रूप में संरक्षित रहते हैं। जब इस तरह की वनस्पति स्फेग्नम, ह्यपनुम या अन्य तरह की काइयों से प्राप्त होता है तो इसे पीट काई कहते हैं। इसे घोल में तोड़ के और भिगो कर इस्तेमाल किया जाता है।

स्फेग्नम काई – व्यावसायिक स्फेग्नम काई अम्लीय दलदल में डूबे हुए पौधे का बचा हुआ सुखा या जीता जागता भाग है। यह पौधे स्फेग्नम प्रजाति जैसे एस पेपील्लोसम, एस सेपिल्लासम, एस पलुस्टर से सम्बंधित होते हैं। यह सामान्यतः वर्षा ऋतु में दक्षिण भारत में समुद्र तल से 1500 मीटर ऊपर जंगली प्रजाति के पेड़ों के तनों से इक्कठे किये जाते हैं। यह अपेक्षाकृत कीटाणु राहित, भार में हल्का और अधिक पानी को वहन की क्षमता रखता है। गोटी बांधने के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला सामान्य माध्यम है।

वर्मिक्यूलाइट – यह वजन में बहुत हल्का और अधिक पानी को वहन की क्षमता रखता है। यह कलमो के रूटिंग मीडियम और गोटी बांधने और कुछ विषेश तरह के पौधों को गमलें में उगने के लिए इस्तेमाल हो सकती है।

पौधों की वृद्धि एवं प्रसार के लिए बर्तन :

यह पॉलिथीन (थैली,गमला) मिट्टी या लोहे का बना होता है। पॉलिथीन थैली एक सस्ता साधन है जबकि रूट ट्रेनर का प्रयोग इस्तेमाल करने और एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में आसान है।

मिटटी का उपचार/ ट्रीटमेंट :

मिट्टी जनित बिमारियों से बचाने के लिए मिट्टी को पारदर्शी पॉलिथीन की पन्नी के अन्दर दबा कर उसे सूर्य की किरणों से उजागर करके उसको गर्म करना एक तरीका है।

मिटटी को सूर्य की किरणों से उजागर करने का तरीका :

बुआई से 15–20 दिन पहले फोर्मलिन घोल को 4–5 लीटर पानी में डालकर, मिट्टी पर छिडकाव किया जाता है और उसे प्लास्टिक की पन्नी से ढक कर रखा जाता है। नर्सरी के निर्माण के समय नर्सरी क्षेत्र की 15–20 से.मी. गहराई पर थिरम जैसे फुन्गिनाशक 5–6 ग्राम/प्रति स्क्वायर मीटर की दर से लगाने होंगे। ढकी हुई प्लास्टिक पन्नी के नीचे कम से कम 4 घंटे तक गर्म भाप की आपूर्ति की जाये और मिट्टी को बीज रोपण तल की तैयारी के लिए तैयार होने दिया जाए।

बुआई से पहले उपचार :

बुआई से पहले उपचार बीज निष्क्रियता को काबू करने के लिए अपनाये जाते हैं ताकि शीघ्र समय पर और एक जैसे बीज अंकुरण के द्वारा बीज उत्पादन सुगम हो सके। बुआई से पहले उपचार के तरीके बीजों पर बुआइ से ठीक पहले उपयोग किये जाते है। हालाँकि बुआई से पहले उपचार के कुछ तरीकों के लिए कुछ से कई दिनों की आवश्यकता पड़ती है। बुआई से पहले उपचार का तरीका उपचार किये जाने वाले बीज की निष्क्रियता के लक्षणों पर निर्भर करता है। बुआई से पहले उपचार के सबसे अधिक सामान्य तरीके इस प्रकार हैं:

- गर्म पानी में भिगोना
- ठन्डे पानी में भिगोना
- उबले हुए पानी का उपचार
- दागने का तरीका (अम्लीय, यांत्रिक, हाथ से)
- अग्नि या गर्म करने का तरीका
- अम्ल में भिगोना
- वैकल्पिक गीला करने या सुखाने का तरीका

बीजों को नर्सरी में बोना :

बीज क्षेत्र को बनाने के बाद नर्सरी में बीज बोए जाते हैं। यह फसल की प्रकृति के अनुसार छींट कर या लाइनों में बोए जाते हैं।

बीज को ढकने की सामग्री :

बीज का कवर :

बीज बोने के बाद उन्हें ढकने के लिए रेत, मिट्टी और एफ वाय एम् (गोबर, मूत्र आदि का मिश्रण) के 1:1:1 के अनुपात में एक मिश्रण बनाया जाता है ताकि बीज बेहतर ढंग से निकल सके। ध्यान रखा जाना चाहिए कि हरेक बीज अच्छी तरह ढका होना चाहिए।

गीली घास का इस्तेमाल :

गर्मियों में धान की सीखं, गन्ने की भूसी या सरकंडे की गीली घांस या किसी भी जैविक गीली घास की मोटी परत और सर्दियों में प्लास्टिक की गीली घांस की मोटी परत बीजों के ऊपर बिछाई जाती है। इससे

मिट्टी की नमी कायम रहती है जिससे उचित ढंग से बीज अंकुरण हो पाता है गीली घास के फायदे इस प्रकार हैं :

- इससे मिट्टी की नमी तथा तापमान कायम रहता है जिससे बेहतर बीज अंकुरण हो पाता है।
- इससे जंगली घास नियंत्रण में रहती है।
- सीधी सूर्य की उष्मा और वर्षा से रक्षा करती है।
- कोपलों को नुकसान पहुँचने से रक्षा करती है।

जब भी जमीन के ऊपर सफेद धागों की कोई संरचना जैसी चीज दिखे तो गीली घांस को ध्यानपूर्वक हटायें ताकि बीज के उभरते हुए भ्रूण को नुकसान ना पहुंचे। हमेशा शाम के समय गीली घांस की परत को हटाए ताकि नए उगते हुए बीजों पर सूर्य के सीधे प्रकाश के दुष्प्रभाव से उसे बचाया जा सके।

छांव वाली जाली का प्रयोग :

बीज अंकुरण के बाद बीज की वृद्धि के समय अगर अधिक तापमान हो (30 डिग्री से अधिक) तो तल से 60'' से 90'' ऊपर किसी उचित सहारे के जरिये उसे हरे/ हरे– काले रंग की छांवदार जाली से 50 से 60 प्रतिशत ढक कर रखनी चाहिये।

पानी देना :

बीजों को सूखने से बचाने के लिए पानी की भरोसेमंद और लगातार आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए पानी के भंडारण की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे तीन दिन की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके। यह भी आवश्यक है कि इसके साथ सिंचाई के लिए इस्तेमाल होने वाले पानी की गुणवत्ता का भी ध्यान रखना चाहिये। साधारण ph पानी सबसे उचित है, जबकि 7 ph से ऊपर के पानी से सीलन फुन्गी के हमले की सम्भावना बढ़ जाती है।

दूरी का ध्यान :

यह महत्वपूर्ण है कि कमजोर, बिमार, खरपतवार, क्षतिग्रस्त, एवं अधिक घने पौधों को नर्सरी से हटाया जाए ताकि इसके तल में पौधों के बीच की दूरी 0.5–1.0 से. मी. बनी रहे।

खरपतवार नियंत्रण :

खरपतवार अंकुरित बीजों की तुलना में ज्यादा ताकतवर होते हैं और उनमें ज्यादा तेजी से बढ़ने की क्षमता होती है। इसलिए वह पोषण, पानी और उष्मा के लिए अंकुरित बीजों से मुकाबला करतें हैं और नयी पौध की वृद्धि को दबाते है। इसलिए स्वस्थ पौध की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि समय समय पर खरपतवार को हाथ से हटाया जाए या इनको उगने से रूकने के लिए स्टॉम्प जैसे पौधनाशकों का, 3 एम. एल. प्रति लीटर पानी में डालकर, नर्सरी में छिडकाव किया जाए। यह छिड़काव बीज बोने और नर्सरी को मिश्रण से ढकने के बाद करना होगा।

पोषण प्रबंधन :

नर्सरी मिश्रण में अच्छी तरह विघटित खाद डालने से गुणवत्तापूर्ण और स्वस्थ पौध सुनिश्चित होगी। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए अजतोबेक्टर, अजोपिरिलम और फोस्फोबेक्टेरिया जैसी जैविक खाद को

प्रति कंटेनर 5 से 10 ग्राम की दर से और वर्मिकोम्पोसट, वी ए एम् को 10 से 50 ग्राम प्रति कंटेनर डालने की सलाह दी जाती है।

पौधों को सख्त बनाना :

सख्त बनाना उस किसी भी उपचार को कहतें है जो पौधे की कोशिकाओं को सख्त बनाती है ताकि पौधा कम और अधिक तापमान और सूखी हवा जैसी विपरीत परिस्थियों में भी जीवित रह सके। इस तरह का उपचार पौधे को नर्सरी से मुख्य खेत में लगाने से पहले किया जाता है जिसमे उसे इस तरह की विपरीत परिस्थिति से उजागर किया जाता है और उसके बाद उसकी वृद्धि को जांचा जाता है। नर्सरी से मुख्य खेत में लगाने से 7 से 10 दिन पहले उसे इस तरह की कृत्रिम विपरीत परिस्थतियों से उजागर किया जाता है। पौध को सूर्य की सीधी ऊष्मा से उजागर किया जाता है, पॉलिथीन पन्नी का कवर हटा लें और सिंचाई को धीरे धीरे रोक दें।

पौधों को सख्त बनाने की तकनीकें :

पौधों को सख्त निम्न तकनीकों से बनाया जा सकता है :

- मुख्य खेत में रोपने से पहले 4–5 दिन सिंचाई रोक दो।
- तापमान कम करने से पौध की वृद्धि अवरुद्ध होती है और यह सख्त बनाने की प्रक्रिया में मदद करती है।
- 4000 ppm NaCl को सिंचाई के पानी में मिलाने से या सायकोसेल का 2000 ppm छिडकाव करने से।

पौधों को सख्त बनाने के प्रभाव :

पौधों को सख्त बनाने के निम्नलिखित प्रभाव देखे गए है:

- सख्त बनाने की प्रक्रिया पौध की गुणवत्ता को बेहतर बनाती है और पौध की कोशिकाओं में कोलाइड आइकॉन की प्रकृति में बदलाव करके उन्हें पानी की कमी के प्रति सहनशील बनाती है।
- सख्त बनाने की प्रक्रिया पौध में सूखे तत्वों की मात्रा बढाती है और पत्तों के प्रति इकाई क्षेत्र में पानी और भाप कणों की मात्रा कम करती है।
- पौध में वृद्धि की दर को कम करता है।
- सख्त बनाने की प्रक्रिया पौध में विपरीत मौसमी कारकों जैसे गर्म दिन, हवा, कम तापमान में सामना करने की क्षमता बढाती हैं। सख्त बनाने की प्रक्रिया बंद गोभी पौध के पत्तों में चिकनाई कवर को बढाती है।

पौध सुरक्षा :

खरपतवार और बिमारियों के विरुद्ध पौध सुरक्षा के कदम अपनाना स्वस्थ पौध के लिए आवश्यक कार्य है। पौधों में सीलन, पत्तों का मुड़ना, पत्तों का तुषार रोग, पत्तों में छेद नर्सरी में पौधों में संक्रमण फैलाते हैं।

समेकित नर्सरी रोग एवं कीट पतंगा नियंत्रण -

- पौध निर्माण के लिए दिखने में स्वस्थ बीजों का चयन
- 0.2 प्रतिशत कार्बनडेजिम/मिथायल/थिओफेनेट/बिनोमयल/थिरम से बीज को लपेटना
- विसंक्रमित भूमि में बीज बोना, स्वच्छ तल एवं पर्याप्त सिंचाई
- पौधों की कटाई छंटाई के लिए विसंक्रमित चाकू और झाड़ी काटने वाली केंची का प्रयोग
- पौध को दूसरी जगह रोपने से पहले 0.2 प्रतिशत कार्बनडेजिम मिश्रण में 3 से 5 मिनट तक रूफ डिप
- रोपने की सामग्री को उचित सूर्य की रोशनी, पानी और स्वस्थ वातावरण में रख कर उसका रखरखाव
- पौधों का बार–बार स्वास्थ परीक्षण और रोगी पौधों को हटाना
- 0.2 प्रतिशत कार्बनडेजिम/डिथेन एम – 45 का निरंतर कालांश में छिडकाव

एक जगह से दूसरी जगह रोपण करना :

- ➢ एक जगह से दूसरी जगह तब रोपण करना चाहिए जब पौध 6 से 8 सप्ताह के हो जाए, 10 से 15 से.मी. लम्बी हो जाए और उसमे 3–4 पत्ते निकल जाए।
- ➢ दूसरी जगह रोपण से 24 घंटे पूर्व नर्सरी तल में पानी दिया जाये ताकि उन्हें सूखने से बचाया जा सके और जड़ का कम से कम नुकसान हो।
- ➢ निकालते समय पौधों को खोद कर निकाले खींच कर नहीं।
- ➢ जब पौधों को दूसरी जगह रोपण किया जाता है तो यह अनुभव किया गया है कि उन्हें आघात पहुंचता है इसलिए यह आवश्यक है कि पुनः रोपण के तुरंत बाद उसे पानी दिया जाए और तब तक उसे लगातार पानी दिया जाए जब तक वह मजबूत ना हो जाए।
- ➢ हमेशा ठंडी परिस्थितियों में पुनः रोपण करें ताकि ठंडी परिस्थियों में रात को ही अपने को स्थापित कर सकें और सूर्य की रोशनी पड़ने से पहले आघात से उभार सकें।
- ➢ उन पौधों को जो आवश्यकता से अधिक बड़े हो चुके हों ऐसे पौधे कमजोर हो सकते हैं और उन पर फूल जल्दी आ सकते हैं ।
- ➢ जब पौधों को दूसरी जगह रोपण किया जाता है तो ध्यान रखना चाहिए कि वह मुरझाये नहीं। उन्हें मुरझाने से बचाने के लिए बार–बार पानी देना चाहिए और उन जड़ो और पत्तों को ढक कर रखना चाहिए जिनमे आद्रता हो।
- ➢ पौधों के पुनः रोपण के समय उन्हें उनकी पहली पत्ती तक मिट्टी में दबाने से फूल फल जल्दी आते हैं।

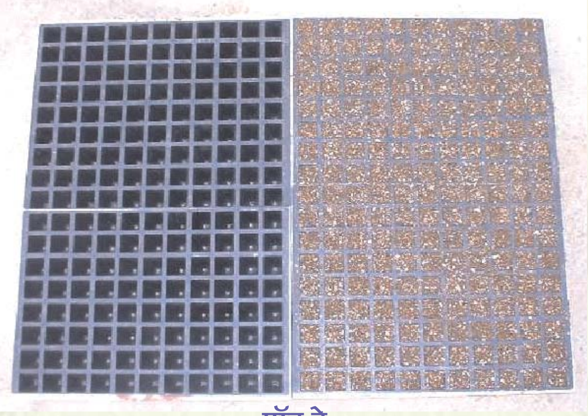

पॉट ट्रे

नर्सरी विकास के लाभ -

नर्सरी में विकसित पौधे अच्छी मांग में रहेंगे क्योंकि नर्सरी में उन्ही प्रजातियों को विकसित जिन्हें प्राथमिकता दी जाती है। खेत में पौध रोपण ज्यादा सफल होगा क्योंकि

कोपलों की गुणवत्ता अच्छी होगी। यह उस समय जब कृषि का काम बहुत हल्का हो उस समय रोजगार और जीविका के अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराता है:

पॉट ट्रे में बीज रोपण

पुनः रोपण के लिए तैयार नर्सरी में तैयार पौधा

नर्सरी गतिविधियों में संभावित सामान्य गलतियाँ

- कंटनेर को ढंग से भरा नहीं जाना।
- कंटनेर का सिलेंडरिकल आकर ना रखना।
- कंटनेर को सीधा खड़ा ना रखना।
- अंकुरण तल में इस्तेमाल होने वाली मिट्टी या रेत को हर उत्पादन चक्र में ना बदलना।
- बीजों को अधिक गहराई में रोपना।
- दूसरी जगह रोपने वाली पौध को एक एक करके उठाना और एठना।
- पौध को निकालने के बाद उसको हवा में उजागर करना।
- कंटेनर से खेत में बुरी तरह रोपना या पुनः रोपन में देरी करना।
- पुनः रोपन के समय नन्ही पौध की जड़ों के आस पास हवा के लिए जगह छोड़ना।
- पुनः रोपन के समय जड़ों की खराब छंटाई।
- नर्सरी से निकालने के बाद और खेत में रोपने से पहले यातायात के लिए कंटेनर में जड़ों की छंटाई पर प्रयाप्त ध्यान ना देना।

डॉ. डी के सिंह[1], डॉ. डी.पी सिंह[1], खुशबू खात्यात[1], शशांक शेखर सिंह[2],

[1]सब्जी विज्ञान विभाग,

[1]जी बी पन्त कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर, उत्तराखण्ड

[2]शोध स्कॉलर, एस.एच.यू.ए.टी.एस., नौनी, इलाहाबाद

हिमालय में मानव- वन्यजीव संघर्ष विघटन

जम्मू और कश्मीर राज्य अनोखे प्राकृतिक स्थलाकृति और कई प्रमुख वन्य जीव प्रजातियों के लिए जाना जाता है जो कि विभिन्न ऊँचाइयों पर पाए जाते हैं। इस राज्य के कई हिस्सों में भी भारत के किसी अन्य हिस्सों की तरह, पशुओं और मानव दोनों पर जंगली जानवरों द्वारा नियमित रूप से हमलों का होना एक गंभीर मुद्दा है। हाल ही में जम्मू और कश्मीर में मानव–वन्यजीव संघर्ष के मामलों की संख्या में वृद्धि देखी गई है। दोनों मनुष्यों और पशुओं पर हमलों की संख्या में वृद्धि संरक्षित क्षेत्रों में और साथ ही इन संरक्षित क्षेत्रों के बाहर भी देखी गई है। हालांकि वन्यजीव संरक्षण विभाग, मानवों पर हमले के मामलों के व्यापक अभिलेख को बनाए रखते हैं पर पशुओं पर हमलों से संबंधित आंकड़े ठीक से नहीं बनाए गए हैं। हाल के विश्व प्रकृति निधि, भारत के अध्ययन से यह पता चला है कि मनुष्यों पर जंगली जानवरों के हमलों के कुल 1444 मामले 6 साल की अवधि में हुए थे। राज्य भर में जंगली जानवरों द्वारा मानव पर हमलों के वार्षिक मामलों की कुल संख्या में वृद्धि देखी गई। वर्ष 2006 में संघर्ष के कुल 130 मामले सामने आए थे जो वर्ष 2011 में 296 मामले हुए जो अब तक की सबसे ज्यादा संख्या है और यह आँकडा वर्ष 2012 में 221 तक गिर गया है।

जंगल में ध्वनि यंत्र लगाते हुए विशेषज्ञ

ध्वनि यंत्र जंगल में लगा हुआ

मानव–वन्यजीव संघर्ष जम्मू और कश्मीर सहित विभिन्न हिमालयी राज्यों में प्रमुख वन्यजीव प्रजातियों के संरक्षण के लिए एक प्रमुख खतरा है। वन्यजीवन के निवास स्थान में कमी आने के कारण मांसाहारी प्रजातियों के प्राकृतिक शिकार में भी कमी आई है और इसके कारण पशुओं पर हमलों के मामलों में वृद्धि हुई है जो बदले में मानव–वन्यजीव संघर्ष का कारण बनता है। इस राज्य में मानव–वन्यजीव संघर्ष जिन प्रमुख वन्यजीव प्रजातियां की वजह से है वो प्रजातियां हैं तेंदुए, काला भालू, भूरा भालू और हिम तेंदुए। पीरपंजाल के क्षेत्र में अधिकांश हमलों के लिये तेंदुए और काले भालू को दोषी ठहराया जाता है। इस मुद्दे से निपटने के लिए वर्तमान में डी0एस0टी0 से समर्थन व वन्यजीव संरक्षण विभाग, जम्मू–कश्मीर सरकार के साथ मिलकर विश्व प्रकृति निधि, भारत इस क्षेत्र में मानव वन्यजीव संघर्ष से निपटने के लिए एक पायलट परियोजना लागू की गई है। यह महत्वपूर्ण इसलिये है क्योंकि प्रमुख स्थानीय वन्यजीव प्रजातियों के साथ स्थानीय समुदायों का यह नकारात्मक संघर्ष वास्तव में वन्यजीव संरक्षण पहल के उद्देश्य को हरा देती है। इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम संबंधित सरकारी विभाग और स्थानीय समुदायों के साथ मिल बैठकर साझेदारी के साथ निवारण रणनीति तैयार की जाये।

इस परियोजना ''पीरपंजाल, जम्मू और कश्मीर में मानव–वन्यजीवन संघर्ष को संबोधित करने के लिए उपयुक्त तकनीकी हस्तक्षेप'' के अंतर्गत सौर विदयुत बाड़ लगाने, अल्ट्रासोनिक उपकरण, ध्वनिक यंत्र और एलईडी यंत्र सहित विभिन्न प्रौद्योगिकियों को उनके संघर्ष विघटन क्षमता के लिए पायलट परीक्षण पीर पंजाल के 5 चयनित गांवों में किया जा रहा है। भूकंपीय सेंसर, मिर्च बम और मैकेनाइज्ड अलार्म, एलईडी चंचल रोशनी, अल्ट्रासोनिक उपकरण और ध्वनिक यंत्र जैसे विभिन्न तकनीकों के उपयोग के संबंध में कई अध्ययन किए गए हैं। इससे पहले इन्हें जम्मू–कश्मीर में कभी भी संचालित नहीं किया गया है और इन प्रदर्शनों और अनुकूलन के माध्यम से परिक्षण की बहुत गुंजाइश है।

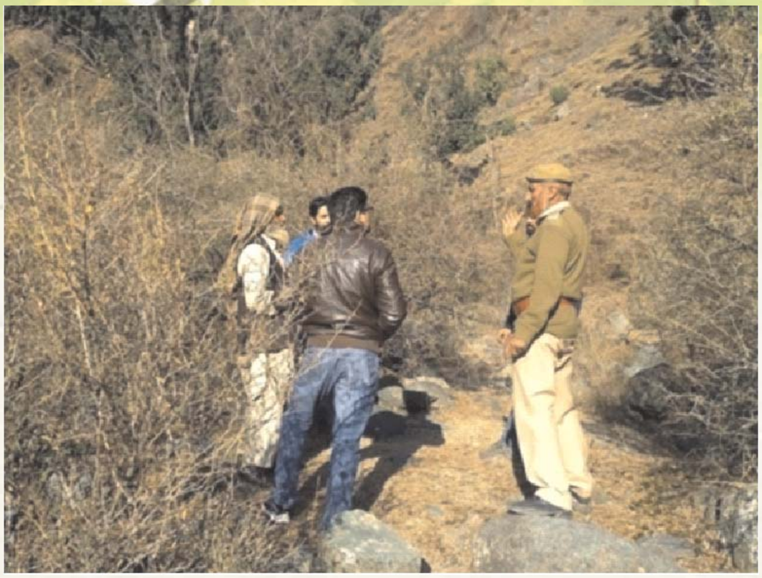

प्रभावित मानव–वन्यजीव संघर्ष क्षेत्र में बातचीत के दौरान विशेषज्ञ, वन विभाग कर्मचारी एवं स्थानीय लोग

इस परियोजना के अंतर्गत 5 चयनित गांवों में जैव ध्वनिक उपकरणों सौर ऊर्जा वाले एलईडी यंत्र और सौर संचालित अलट्रासोनिक उपकरणों सहित प्रस्तावित प्रौद्योगिकियां स्थापित की गई हैं। इन प्रौद्योगिकियों के उपयोग द्वारा जानवरों को दूर रखने से मानव–वन्यजीव संघर्ष को रोकने में उनकी प्रभावशीलता के लिए परीक्षण किया जा रहा है। (जैव ध्वनिक उपकरण समान्य तरीके से काम करते हैं एवं परंपरागत तरीके) जैसे कि खाली कनस्तरों, पटाखे, ड्रम आदि का उपयोग करके ध्वनि उत्पन्न कर जानवरों को हानि होती है। यह उपकरण किसी भी प्रकार की ध्वनि से लोड किया जा सकता है, जो जानवरों को दूर भगा सकता है। अल्ट्रासोनिक डिवाइस उच्च आवृत्ति ध्वनि तरंगों का उत्सर्जन करते हैं जो मानवों के लिए श्रव्य नहीं हैं लेकिन ज्यादातर जानवर उन्हें सुन सकते हैं। इसके अलावा कई जानवर अल्ट्रासोनिक तरंगों से संपर्क करने से बचने के लिए जाने जाते हैं। ध्रुवीय भालू पर एक अध्ययन

ने सुझाव दिया कि अल्ट्रासोनिक तरंगों के संपर्क में होने पर लगभग 70 प्रतिशत ध्रुवीय भालू भाग जाते हैं। यह हिमालयी काले भालू के लिए भी सच हो सकता है। इस परियोजना के तहत स्थापित अल्ट्रासोनिक यंत्र सौर शक्ति वाले हैं।

प्रौद्योगिकी की स्थापना के अलावा हित धारकों के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। वन और वन्यजीव विभागों के अग्र स्तरीय कर्मचारियों को बुनियादी प्रशिक्षण के साथ इस परियोजना के तहत स्थापित उपकरणों का उपयोग करने के लिए और मानव–वन्यजीव संघर्ष को रोकने में अपनी क्षमता का उपयोग करने के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। फील्ड स्तरीय सामुदायिक भागीदारी भी आयोजित की गई है जहां फील्ड समूह द्वारा विभिन्न समुदाय परिवारों को उनके क्षेत्र की प्रमुख वन्यजीव प्रजातियों के बारे में जागरूक करने के लिए दौरा किया गया था। इस प्रकार जागरूकता अभियान परियोजना के कार्यान्वयन को और मजबूत करेगा और जंगली जानवरों द्वारा नियमित हमलों से समुदायों के बचाने में मदद करेगा। ध्वनि वैज्ञानिक हस्तक्षेपों के माध्यम से उचित क्षमता निर्माण और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से डी0एस0टी0 के कार्यक्रम के तहत हिमालय में मानव वन्यजीव संघर्ष से निपटने के लिए एक आदर्श विकसित करने की योजना है। इस परियोजना द्वारा प्राप्त परिणामों को अन्य राज्यों में भी प्रचारित व प्रसारित किया जाएगा ताकि इस जटिल समस्या का हल निकाला जा सके और साथ ही साथ जंगली जानवरों का भी संरक्षण हो सके।

रोहित रतन एवं पंकज चन्दन

विश्व प्रकृति निधि(डब्लू.डब्लू.एफ.) – भारत

उत्तर पश्चिमी हिमालय की पारंपरिक उपेक्षित फसलों का पोषण सुरक्षा में महत्व

सार -

उत्तर पश्चिमी हिमालय के पांरपरिक उपेक्षित फसलें जैसे चौलाई, भरेस, बथुआ, सतरंगी माह और लाल माह इत्यादि बहुउपयोगी होने के साथ संतुलित पोषक तत्वों से भरी हैं। इनका सेवन करने से कई तरह के कुपोषण एंव जीवन शैली संबधी बीमारियों से बचा जा सकता है। इन फसलों की आनुवाशिंक विविधताएं प्रधान फसलों से स्पर्धा के कारण खतरे में है। जिस वजह से इन फसलों की विविधताओं को भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित रखना और अच्छी उपज को सुनिश्चित करने के लिए इन फसलों का सुधार आज के समय में अतयन्त आवश्यक है।

परिचय -

बढ़ती आबादी, कुपोषण एवं खाघ सुरक्षा 21वीं सदी के लिए मुख्य चुनौती के रूप में उभरी है । केवल तीन फसलें – गेंहू, चावल और मक्का पर करीब आधे से अधिक विश्व की आबादी निर्भर है और ये फसलें जिनमें लगभग अधिकतम फसल सुधार हो चुका है, जलवायु परिवर्तन में सबसे अधिक चपेट में है। यह तीन फसलें मनुष्य के सभी पोषण सम्बंधी आवश्यकताओं को पूरी करने में भी असमर्थ है, क्योंकि इनमें एक या एक से अधिक पोष्टिक तत्व बहुत कम या नहीं होते है। अगली पीढ़ी को कुपोषण से बचाने और सम्पूर्ण आहार पहुचाने के लिए वैकल्पिक फसलें और फसल विविधीकरण एक अग्रिम रास्ते के रूप में उभरा है। फसल विविधीकरण के लिए उपेक्षित पारंपरिक फसलें मुख्य योगदान कर सकती हैं। उपेक्षित फसलें वह फसल है जिनमें खाघ सुरक्षा, खाघ सम्प्रभुता, पोषण सुरक्षा तथा आजीविका सुधार को सुनिश्चित करने की पूर्ण क्षमता होती हैं, परन्तु इन फसलों का मुख्य धारा की कृषि फसलों के साथ सीमित प्रतिस्पर्धा के कारण इनका महत्व महसूस नहीं किया जा पाता। इन फसलों में संतुलित पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं और ये फसलें सीमांत, जटिल और कठिन वातावरण के अनुकूल भी होते है।

उत्तर पश्चिमी हिमालय की पारंपारिक उपेक्षित फसलें -

चौलाई :

चौलाई एक बहुउपयोगी प्राचीन फसल है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान श्री राम चन्द्र जी ने अपने वनवास के समय इसी का सेवन किया था। जिस वजह से कालांतर में इसे "रामदाना या रामजीरा" के रूप में भी जाना जाने लगा (चित्र 1)। चौलाई में अन्य अनाजों की उपेक्षा अधिक पोषक तत्व होते हैं। रामदाना के अलावा इसे और भी कई नामों से जाना जाता है, जैसे सलियारा, दरंतर, डंखर, कलजी, बाथु, सियूल और तुलसी। चौलाई दो प्रकार की होती है, एक जिनका सेवन दानों के रूप में है दूसरा हरी सब्जियों के रूप में होता है। दानों की प्रजातियां मुख्यतः *अमरेंथस हाइपोकौकन्ड्रिएकस, अमरेंथस क्रुएण्टस* तथा *अमरेंथस कौडेटस* है जबकी सब्जी के रूप में *अमरेंथस लिवीडस* तथा *अ. डुबियस* को उगाया जाता है। इसका उत्पत्ति क्षेत्र 6000 वर्ष पूर्व, उत्तर मध्य एंव दक्षिण अमेरिका में माना जाता है। इसकी व्यावसायिक खेती मुख्यतः चीन, भारत, केन्या, मेक्सिको, नेपाल, पेरू, रूस और विभिन्न यूरोपिय देशों में होती है।

भरेस - ओगला व फाफरा :

इस फसल का उत्पादन हिमाचल के उंचाई वाले क्षेत्रों में 2000 मीटर के ऊपर के इलाकों में मुख्य रूप से होता है। इसमें पौष्टिक गुणों के साथ–साथ औषधीय गुण भी पाये जाते है। इसकी दो प्रजातियां ओगला–मीठी भरेस *(फैगोपाइरम एसकुलेटंम)* जिसे कुटु भी कहते है, और फाफरा–कड़वी भरेस *(फै. टटैरिकम)* है (चित्र 2) । ओगला के मुकाबले फाफरा की पैदावार ज्यादा होती है। भरेस में एक विशेष रासायनिक तत्व "रूटिन" पाया जाता है, जो शरीर की नसों (धमनियों व शिराओं) को मजबूत व लचीला बनाता है, जिससे हृदय सम्बन्धी बीमारियों से बचा जा सकता है। यह रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा को भी बढ़ने से रोकता है। ओगला की तुलना में फाफरा की पत्तियों में रूटिन अधिक मात्रा में होता है। भारत में इसकी खेती पहाड़ी क्षेत्र जैसे की हिमाचल प्रदेश, उतराखण्ड, जम्मु कश्मीर, पश्चिमी बंगाल, सिक्किम, मेघालय आदि में कि जाती है। हिमाचल प्रदेश में इसे शिमला, किन्नौर, कुल्लू, मण्डी, लाहौल व स्पीती जिलों में प्रमुख रूप से उगाया जाता है।

बथुआ :

बथुआ की विश्व में लगभग 250 प्रजातियां पाई जाती है, जिनमें लगभग 15 प्रजातियां ही भारत में मिलती है। भारत देश में दाने व साग के लिए मुख्यतः इसकी एक ही प्रजाती *चिनोपोडियम एलबम* का प्रयोग किया जाता है (चित्र 3)। इसके दानों का रंग मुख्यतः काला, भूरा, हल्का सफेद या हल्का लाल होता है। इसको क्षेत्रीय स्तर पर टाक, टका, वजर, भांग, सिंरारी, राटा, कारउ, छराथु तथा बथुआ के नामों से जाना जाता है। इसकी एक और प्रजाति *चिनोपोडियम किनोवा* जो संसार के "एंड़ियन" क्षेत्र में पाई जाती है तथा मुख्यतः दाने के रूप में प्रयोग की जाती है, आजकल भारत देश में यह एक चर्चित फसल के रूप में उभरा है।

सतरंगी माह :

संतरगी माह का वानस्पतिक नाम *विग्ना अम्बीलैटा* है, जिसे एक बहुपयोगी दलहन फसल के रूप में जाना जाता है (चित्र 4) । यह फसल उपेक्षित एवं लघु उपभोगी फसलों में से एक है, जिसका उपयोग दलहन फसल, पशुचारा और हरी खाद के रूप में होता है। इसको हिमाचल प्रदेश के कई इलाको में विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे नोरंगी, राजमूंग, मोठ, पहाड़ी मूगं। इसका उत्पत्ति क्षेत्र हिन्द–चीन माना गया है। इसका उत्पादन विश्व भर में चीन, मलेशिया, कोरिया, इण्डोनेशिया, बर्मा और भारत आदि में होता है।

लाल माह :

लाल माह मूगं से मिलता जुलता उसी के परिवार का पौधा है, जिसका वानस्पतिक नाम *वीग्ना ऐंगुलेरिस* है (चित्र 5)। इसका उत्पादन और उपयोग सबसे अधिक चीन, जापान, जर्मनी व फ्रांस इत्यादि में होता है। यह इस देश के लिए एक नई फसल है। इसे कम लागत, और कम उपजाऊ जमीन पे भी उगाया जा सकता है। इसके ऊपर बीमारीयों और कीड़ो का प्रभाव भी बहुत कम होता है। जापान में इसका उपयोग सौदंर्य सामग्री बनाने में अधिक होता है।

उत्पादकता, जलवायु अपेक्षा एवं खेती :

उपेक्षित फसलों को कम लागत में सामान्यतः उगाया जा सकता है, फिर भी यदि निराई –गुडाई, सिंचाई, खाद और उर्वरक पर ध्यान दिया जाए तो अच्छी उपज ली जा सकती है। इन फसलों पर आम तौर पर कीट और बीमारियों का कम प्रकोप पड़ता है। सीमांत भूमि एवं अति जलवायु के लिए अनुकुलित होने के कारण इन फसलों में देखभाल की भी आवश्यकता कम होती है। नीचे इन फसलों की खेती के लिए कुछ आवश्यक मापदंड़ (जलवायु स्थिति के परिपेक्ष में) दर्शाये गये है ।

तालिका अः उपेक्षित फसलों की खेती के लिए आवश्यक मापदंड़ का विवरण –

मापदंड(प्रति हेक्0)			फसलें		
	चौलाई	बथुआ	भरेस	संतरगी माह	लाल माह
बीज की मात्रा –(किग्रा0)	2–3	1.5–2	40–50	40–45	40–45
तपमान- (°C)	25–35	5–30	12–30	24–48	15–30
वर्षा-(मिमी0)	400–1200	400–1200	300–1100	1500–2000	500–1700
उर्वरक-(किग्रा0)	40:20:20	40:20:20	40:20:20	20:40:20	20:40:20
परिपक्वता-(दिन)	130	130	125	150	130
उपज-(क्विंटल)	15–18	7–8	10–12	18–20	12–15

पोषक तत्वों का विवरण :

इन पारंपरिक फसलों का मुख्यधारा की फसलें जैसे धान, गेंहु, मक्का तथा दलहन की तुलना में पौष्टिक तत्व संतुलित एवं अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इन उपेक्षित फसलों को खेतो मे बीज कर तथा इनका साग व अनाज खा कर सस्ते में ही पौष्टिकता हासिल कर सकते है। चौलाई में प्रोटिन की मात्रा 16 ग्राम/100 ग्राम पाई जाती है जोकि दूसरे मुख्य अनाजों जैसे गेंहू, चावल, मक्की आदि से ज्यादा मात्रा में विद्यमान है। नीचे इन फसलों का मुख्यधारा की फसलों से तुलनात्मक विविरण **तालिका ब** में दिया गया है।

तालिका ब : पारंपरिक उपेक्षित फसलों का मुख्यधारा की फसलों से पोषण तत्वों के लिए तुलनात्मक विवरण (प्रति 100 ग्राम) –

फसल	प्रोटीन(ग्रा0)	कार्बोहाड्रेट(ग्रा0)	लिपीड(ग्रा0)	मीनरल(ग्रा0)	फाइबर(ग्रा0)
चौलाई	16.0	62.0	8.0	3.0	2.43
भरेस	13.0	72.9	7.4	2.1	10.5
बथुआ	14.0	65.0	7.0	3.0	4.1
गेंहू	12.0	69.0	17	2.7	12.2
चावल	6.7	78.0	0.3	.3	1.3
सतंरगी माह	20.9	60.7	0.9	4.2	4.8
लालमाह	19.9	64.4	0.6	4.3	7.8
चना	19.4	60.9	5.6	3.1	2.5

फसल सुधार एवं सवर्धन :

इन पारंपरिक फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक पद्वति से फसल सुधार कार्यक्रम होना जरूरी है जिससे भविष्य में इनकी खपत को पूरा करने के लिए पर्याप्त उपज सुनिश्चित किया जा सके। फसल सुधार के लिए इन फसलों का अनुवंशिक विविधता को सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है। मुख्य धारा की फसलों से स्पर्धा की वजह से इन फसलों की अनुवांशिक विविधता लुप्त होने के खतरे में है। यदि विविधताओं का संवर्धन नहीं किया गया तो भविष्य में फल सुधार लगभग असंभव हो जायेगा। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की संस्थान राष्ट्रीय पादप अनुवांशिकी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली का क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला इन पारंपरिक फसलों के सुधार एवं सवर्धन के कार्य में पिछले कई दशको से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इन फसलों को भावी पीढियों के लिए संरक्षित करना और साथ ही साथ निंरतर फसल सुधार कार्यक्रम में उपयोग के लिए इनके अनुवांशिक विविधताओं को लम्बी अवधी के लिए "भारतीय राष्ट्रीय जीन बैंक" नई दिल्ली और मध्यम अविधि के लिए "मध्यम अवधि भडांरण" शिमला में सरक्षित रखा जाता है **तालिका स** में।

तालिका स : मध्यम अवधि भडारण में संर्वधित उपेक्षित फसलों की संख्या

फसल	परिग्रहण	फसल	परिग्रहण
चौलाई	3270	लालमाह	169
भरेस	1000	सतंरगी माह	332
बथुआ	199		

राष्ट्रीय पादप अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो क्षेत्रीय केन्द्र शिमला इन फसलों के सुधार के लिए कई सालों से प्रयासरत है। इस केन्द्र ने चौलाई की उन्नत किस्म "दूर्गा" व "अन्नपूर्णा", भरेस की "हिमप्रिया" व "हिमगिरी" और बथुआ की "हिमबथुआ" विकसित करने में अहम भूमिका निभाई है। देश में अभी इन फसलों की उन्नत किस्में बहुत कम है। नीचे इन फसलों के कुछ उन्नत फसलों का विविरण दिया गया है **तालिका द** में।

तालिका द : उपेक्षित फसलों की कुछ उन्नत किस्में

फसल	किस्में
चौलाई	दुर्गा, अन्नपूर्णा (चित्र 1)
भरेस	हिमप्रिया (चित्र 2) वी.एल.7, शिमला बी–1, हिमगिरी
बथुआ	हिमबथुआ (चित्र 3), इ.सी 507741, एन.आई.सी 22503
सतंरगी माह	वी.आर.वी.–3, बी.आर.एस–1, बी.आर.ए–.2
लाल माह	एच. पी.यु –51

निष्कर्ष -

पारंपरिक उपेक्षित फसलें प्राचीन काल से ही क्षेत्रिय लोगों के पोषण सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा में योगदान करती आ रही हैं। आज के समय में लोगों में होने वाली कई बीमारियां व कुपोषण से बचने में इन फसलों का प्रमुख योगदान हो सकता है। आधुनिक खेती एवं कुछ ही फसलों पर मनुष्य की बढ़ती निर्भरता उन्हें बीमारियों के लिए संवेदनशील बना रही है, साथ ही साथ इन फसलों से प्रतिस्पर्धा के कारण उपेक्षित फसलें अत्यधिक खतरे में है। इनके उपयोगिता को देखते हुऐ इन फसलों का प्रोत्साहन, संवर्धन और सुधार अत्याधिक आवश्यक है, जिससे हमारी भावी पीढ़ी का पोषण और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित किया जा सकें।

चित्र 1 – दुर्गा व अन्नापूर्णा चौलाई

चित्र 2 – हिमप्रिया भरेस

चित्र 3 – चिनोपोडियम एलबम – बथुआ

चित्र 4 – लाल माह

चित्र 5 – सतरंगी माह

राहुल , बादल सिंह , नरेन्द्र नेगी और मोहर सिंह

राष्ट्रीय पादप आनुवांशिकी, ब्यूरो क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला–171 004

पानी व कमरा गर्म करने के लिए सौर ऊर्जा संयत्र/पैनल बनाना

पहाड़ों में लकड़ी ऊर्जा का एक मुख्य स्त्रोत है जो ज्यादातर वनों से प्राप्त होती है। लकड़ी का प्रयोग खाना बनाने, पानी गर्म करने और घरों को गर्म रखने के लिए किया जाता है। बढ़ती आबादी के साथ लकड़ी पर निर्भरता व उसकी खपत बढ़ती जा रही है इससे प्राकृतिक वनों पर लगातार दबाव पड़ रहा है। दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए वनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है अतः वनों को बचाने के लिए लकड़ी के बदले कुछ नए विकल्पों की ज़रूरत हैं। इनमें एल0पी0जी0 एक मुख्य विकल्प माना जा रहा है परन्तु इसकी बढ़ती कीमत तथा पहाड़ों में परिवार की संरचना के कारण एल0पी0जी0 का उपयोग का विश्लेषण यह दर्शाता है कि पहाड़ों में पानी गर्म करने के लिए लगभग 25 से 30 प्रतिशत लकड़ी की खपत होती है। गर्म पानी की ज़रूरत लगभग साल भर रहती है इसलिए सौर ऊर्जा पानी गर्म करने के लिए एक अच्छा व सस्ता विकल्प है। इससे न केवल घरेलू स्तर पर गर्म पानी की ज़रूरत पूरी होगी बल्कि जंगलों का संरक्षण और महिलाओं को भी लकड़ी इकट्ठा करने से काफी राहत मिलेगी। इस मार्गदर्शिका में साधारण तरीके से, घरेलू स्तर पर, सौर ऊर्जा से पानी गर्म करने के संयत्र को बनाने की विधि को दर्शाया गया है।

सौर उर्जा से पानी गर्म करने का सिद्धांत-

सूर्य की किरणों से पानी का पाइप गर्म होता है, इससे पाइप के अंदर का पानी भी गर्म होने लगता है। सूर्य की किरणों की तीव्रता को बढ़ाने के लिए पानी का पाईप के आगे पारदर्शी शीशे का प्रयोग किया जाता है। पानी गर्म होने पर, ऊपर के निकासी वाले भाग से पानी बाहर निकलने लगता है और ठण्डा पानी गर्म होने के लिए पाईप में प्रवेश करता रहता है। सूर्य की किरणों की तीव्रता व सयंत्र की गर्मी बनाए रखने वाले इंन्सुलेशन की क्षमता के आधार पर, पानी को 50–90°C तक गर्म किया जा सकता है। गर्म हुए पानी को खाना बनाने, कपड़े धोने, नहाने तथा घरेलू साफ सफाई में प्रयोग किया जा सकता है।

सौर ऊर्जा द्वारा पानी गर्म करने का सयंत्र

सयंत्र के लिए स्थान का चयन :

सयंत्र के लिए घर में दिन के समय अधिक से अधिक समय तक धूप का होना आवश्यक है और वहां किसी वृक्ष अथवा साथ वाले घर की या दीवार की छाया नहीं पड़नी चाहिए। इसके साथ–साथ चयनित स्थान ठंडे पानी के नल व गर्म पानी के उपयोग वाले स्थान से कम से कम दुरी पर हो। सयंत्र को घर की छत पर या स्नान गुह पर लगाना उचित होता है।

सयंत्र के अवयव :

सयंत्र के मुख्यत: चार अवयव अथवा भाग होते हैः–

1. एल्यूमीनियम की पाइप की कॉयल और लोहे की चादर :

एल्यूमीनियम की पाइप की कॉयल और लोहे की चादर जिसके ऊपर पर काला पेंट किया गया हों, आवश्यक है। यह सूर्य की ऊर्जा से पानी का तापमान 50–90°C व इससे ज़्यादा करने में मदद करता है।

2. लकड़ी का फ्रेम :

लकड़ी के फ्रेम का माप 72"x 39" x 5.5" होता है। एल्यूमीनियम पाईप की कॉयल और लोहे की चादर को लकड़ी के फ्रेम में फिक्स किया जाता है।

3. इन्सुलेशन की परत :

इंसुलेशन के लिए 3.75 सेंटीमीटर मोटी थर्माकोल की शीट का प्रयोग किया जाता है। थर्मोकोल की जगह गेहुं का भूसा, लकड़ी का बुरादा व सूखी घास का प्रयोग भी किया जा सकता है। इन्सुलेशन को बाहर से मज़बूत करने के लिए एल्यूमीनियम की पतली चादर को चारो ओर से लकड़ी के फ्रेम में कीलों से पक्का किया जाता है।

4. पारदर्शी शीशा :

सौर ऊर्जा की क्षमता बढ़ाने के लिए, लकड़ी के फ्रेम में पाईप की कॉयल के ऊपर पारदर्शी शीशे की दो परतें, 1.25 सेंटीमीटर के फासले पर लगाई जाती है। शीशे की परतें 4–5 मिलीमीटर मोटी होनी चाहिए।

सौर ऊर्जा से पानी गर्म करने के सयंत्र बनाने हेतु आवश्यक सामान की सूची :

क्र.	सामग्री	माप	मात्रा
1	लकड़ी का चारन	72"x 5.5" x 2"	2 नग
		39"x 5.5" x 2"	2 नग
		39"x 2" x 2"	3 नग
2	शीशा लगाने की फटियां	1/2"x1/2"x1/ 2"	36 फुट
3	लकड़ी का प्राईमर	1 लीटर	
4	लोहे का प्राईमर	1 लीटर	
5	काला पेंट	2 लीटर	
6	हरा पेंट	1 लीटर	
7	लोहे की चादर	50 (गज)	
		39"x 96"	1 नग
8	पानी की टयूब/पाईप	69"x 37"x 1.5"	1 नग
9	रिडियूसर	1/1/2"x 1.5"	2 नग
10	निपल	12"x 1/2"	2 नग
11	सॉकेट	1/2"	2 नग
12	नॉन रिटरनिंग वॉल्व	1/2"	1 नग
13	ब्रास निपल	1/2"	1 नग
14	पारदर्शी शीशा	1/2"	6 नग
15	कीलें	1/2"x 1	50 ग्राम
16	कीलें	1/2"x 1	50 ग्राम
17	शीशा लगाने की क्लिप	100 ग्राम	
18	फेविकोल	100 ग्राम	
19	एम–सील या सफेदा	1 पैकट	
20	थर्मोकोल	4 नग	
21	एल्यूमीनियम की पतली चादर	1 नग	

सौर उर्जा संयत्र बनाने की प्रक्रिया -

पहला चरण-लकड़ी का फ्रेम बनाना:

सौर ऊर्जा पैनल कमरा गर्म करने का तथा एक घर की दीवार पर लगा हुआ पैनल जंसकार, लद्दाख में

सौर ऊर्जा सयंत्र बनाने के लिए, लकड़ी की फ्रेम बनाना पहला कार्य हैं। लकड़ी का फ्रेम (चित्र–1) बनाने के लिए 10″x10″x5″ का एक स्लीपर की लकड़ी का चरान 72″x5.5″x2″ करें। 39″x5.5″x2″ के दो और नग बना लीजिए। प्रत्येक फ्रेम की लकड़ी को सड़ने से बचाने के लिए उसकी रंदाई करके उस पर पेंट करें। पादाम निकालने के बाद दो लम्बी फ्रेमों को समांनातर रखकर उनके सिरों को छोटी फ्रेमों से जोड़ें। पादाम से पादाम का अंदरमान 37″ होना चाहिए जिससे पानी गर्म करने की पाईप (coil) आसानी से फिट हो सके। फ्रेम के जोड़ों को पक्का करने के पहले प्राईमर करें। प्राईमर सूखने के बाद दो बार हरा या कोई भी दूसरा पेंट जो उपलब्ध हो सकें।

दूसरा चरण-लकड़ी के फ्रेम में लोहे व एल्यूमीनियम की चादर लगाना :

लोहे की एक 50 गेज की 96″x 39″ पतली चादर को लेकर प्राईमर (Red Oxide) की परत चढ़ाएं जिससे जंग न लगे। प्राईमर सूखने के बाद चादर पर काले पेंट की दो परतें चढ़ाएं। इससे चादर धूप लगने पर जल्दी से गर्म हो जाती हैं। इस चादर को कीलों की मदद से लकड़ी के फ्रेम मे लगाएं (चित्र–2)। चादर के दूसरी तरफ (बिना पेंट के) थर्मोकोल की 1.5 इंच मोटी शीट के टुकड़े लकड़ी की फ्रेम के पादाम में लगाएं। इनसे लोहे की चादर और पानी की गर्मी बनाए रखने में सहायता होती है। थर्मोकोल के बाहर से एल्यूमीनियम की पतली चादर फ्रेम के ऊपर कीलों से पक्का करके लगाएं।

तीसरा चरण- एल्यूमीनियम के पाइप की कॉयल लकड़ी के फ्रेम में लगाना :

एल्यूमीनियम की पाइप की कॉयल पर प्राईमर (Red Oxide) और काले पेंट की परत चढ़ाएं। कॉयल को लकड़ी को फ्रेम के बीच में, पेंट की हुई लोहे की चादर पर रखकर, लोहे की पत्तियों से पक्का किया जाता है। पाइप के दोनों सिरों पर कनेक्शन के लिए 1.5″ लोहे के पाईप के सिरे पर 1.5″x 0.5″ रिडियूसर के साथ जोड़ा जाता है। रिडियूसर को एल्यूमिनियम की पाइप की कॉयल के साथ जोड़ते समय चुड़ियों पर सफेदा या एम–सील अवश्य लगाएं। इससे पानी के लीक होने की आशंका नहीं रहती। पैनल में

कॉयल लगाने के बाद चिन्हित स्थान पर पैनल को 450 के कोंण पर दक्षिण दिशा की ओर खड़ा करें। फिक्स करते समय कॉयल वाला हिस्सा धूप की ओर होना चाहिए (चित्र–3)। पानी की कॉयल के निचले कोने से ठण्डा पानी अन्दर जाता है। ठण्डा पानी बाहर न आए और पाईप हमेशा भरा रहे इसलिए इस कोने पर पानी को रोकने के लिए वॉल्व लगाया जाता है।

ठण्डा पानी छोड़ते ही गर्म पानी ऊपर की ओर से बाहर निकलता हैं। इसलिए गर्म पानी की निकासी वाले मुख पर कोई नल लगाने की आवश्यकता नहीं है। निकासी वाले मुख बंद करने से कॉयल में दवाब बनता है और संयत्र धमाके के साथ फट सकता है इसलिए कभी भी गर्म पानी की आउटलैट को बंद न करें और हमेशा खुला रहने दें।

चौथा चरण- लकड़ी के फ्रेम में शीशा लगाना :

एल्यूमीनियम की पाइप की कॉयल पर यदि सामान्य पारदर्शी शीशा लगा दिया जाए तब सूर्य की किरणों की ऊर्जा लकड़ी के फ्रेम के अन्दर की हवा को ठण्डी नहीं होने देगी और पानी का तापमान बढ़ता रहेगा। लकड़ी के फ्रेम में शीशा लगाने के लिए पैनल को बराबर 3 हिस्सों में दो पतली फ्रेमों से विभाजित करें। बड़ा शीशा गांव में लाना कठिन है और टूटने का अधिक खतरा रहता है इसलिए पैनल में 6 छोटे शीशे लगाने चाहिए।

3 पारदर्शी शीशे को फ्रेम के 3 हिस्सों में पादाम के ऊपर रखकर 1.5 फिट की फट्टी से फिक्स करें। आधा ईंच की फट्टी के ऊपर दूसरा शीशे को रखें और बाहर से फट्टी लगाकर फिक्स करें (चित्र–4)। फट्टियों को प्राईमर और रंग करना आवश्यक है जिससे ये जल्दी नहीं सड़ती। प्राईमर और रंग शीशा लगाने से पहले कर लें जिससे शीशे पर रंग नहीं लगे। पानी गरम करने का सौर ऊर्जा सयंत्र उपयोग हेतु तैयार है (चित्र–5)।

सावधानियां व उपयोगिता -

1. सौर ऊर्जा सयंत्र में पहली बार पानी गरम करने के पूर्व ठण्डा पानी रात के समय भरें। ध्यान रहे कि ठण्डा पानी डालने से पहले कॉयल गर्म न हो, नही ंतो शीशे के फटने का खतरा रहता है।
2. पानी की कॉयल में किसी प्रकार की लीकेज को फिक्स करने से पहले पानी का तापमान अवश्य जांच लें।
3. कॉयल के दोनों सिरों पर रिडयूसर लगाते समय एम–सील अवश्य लगायें।
4. गर्म पानी की निकासी से दूर रहे क्योंकि पानी से जलने का खतरा रहता है।
5. पैनल को ऊंचाई वाली जगह जैसे कि छत पर या स्लैब पर लगायें जिससे यह बच्चों की पहुंच से दूर रहे।
6. गर्म पानी की निकासी वाली पाईप पर नल न लगायें क्योंकि प्रैशर बनने से टयूब/पाईप में धमाका हो सकता है।
7. गर्म पानी धूप आने के 30 मिनट बाद निकाल सकते है।
8. दिन में आवश्यकता अनुसार गर्म पानी की निकासी घर के कार्यो के लिए की जा सकती है, लेकिन सूर्यास्त से 30–60 मिनट पहले यदि पानी की निकासी बन्द कर दे तो गर्म पानी देर रात या सवेरे मिल सकता है।

9. एल्यूमीनियम की टयूब/पाईप से हमेशा साफ पानी मिलता है और इसे खाना बनाने में भी प्रयोग किया जा सकता है जिससे ईंधन की बचत की जा सकती है।

संयत्र की लागत, श्रम व्यय व वांछित अवधि -

एक 100–120 लीटर प्रतिदिन क्षमता वाले संयंत्र को बनाने के लिए लगभग 10000 रूपये/– तक का खर्चा आता है। ठण्डे व गर्म पानी के टैंकों व फिटिंग का खर्चा इससे अतिरिक्त होगा। गांव में जहां लकड़ी की फ्रेम और परिवार के सदस्य की मदद उपलब्ध हो तो इस लागत को कम किया जा सकता है। एक सयंत्र बनाने के लिए एक मिस्त्री व सहायक को एक दिन का समय लगता है।

सौर ऊर्जा से कमरा गर्म करने का पैनल बनाना -

पानी गर्म करने वाले सौर ऊर्जा सयंत्र से यदि पानी की कॉयल निकाल दी जाए और पैनल को दक्षिण दिशा में घर के कमरे की दीवार पर लगाया जाए तो सूर्य की ऊर्जा को कमरा गर्म करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कमरे से ठण्डी हवा को शीशे और लोहे की चादर के बीच दो छिद्रों के द्वारा; कमरे से पैनल के निचले हिस्से में शीशे और लोहे की चादर के बीच से कमरे में छिद्र के द्वारा लाया जाता है। हवा का प्रवाह कमरे से पैनल तक और गर्म होने के बाद पैनल से कमरे तक बिना किसी मशीन व ऊर्जा से होता है। शीशे से लोहे की चादर पर धूप लगने से चादर गर्म हो जाती है और कमरे से आने वाली ठण्डी हवा कमरे से निचले छिद्र से प्रवेश करती है। ठण्डी हवा कमरे से निचले छिद्र के द्वारा बाहर आ जाती है। इस तरह लगातार हवा का प्रवाह कमरे से बाहर व अंदर होने से कमरे का तापमान बढ़ता है। इस प्रक्रिया से सर्दी के दिनों में सौर ऊर्जा से कमरों को गर्म करने में प्रयोग किया जा सकता है।

डा० लाल सिंह,
निदेशक, हिमालयन रिसर्च ग्रुप,
उमेश भवन, छोटा शिमला,
शिमला–171002, हिमाचल प्रदेश

वर्ष 2017–18 के दौरान टाईम-लर्न कार्यक्रम के अंतर्गत किये गये प्रमुख कार्यों की सूची

1) उत्तर–पश्चिमी हिमालयी राज्यों (जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड) में 20 परियोंजनाओं का शुभारभं।
2) 22–23 मई, 2017 को भारतीय वन्यजींव सस्थान (डब्लू0आई0आई0), देहरादून में योजना एवं निष्पादन कार्यशाला का आयोजन।
3) विशेषज्ञ दल द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के कार्यों का निरिक्षण।
4) इस कार्यक्रम के अंर्तगत विभिन्न परियोंजनाओं की वार्षिक प्रगति का दस्तावेजीकरण।
5) तकनिकि सलाहकार विशेषज्ञ समूह(टी0 ए0ई0जी0) कमेटी द्वारा वार्षिक समूह निगरानी कार्याशाला (ए0जी0एम0डब्लू0) का आयोजन 7 व 8 दिसंबर, 2017 को शेर–ऐ–कश्मीर कृषि विज्ञान एवं तकनिकि विश्वविद्यालय जम्मू में किया गया तथा टाईम–लर्न कार्यक्रम की विवरण पुस्तिका का विमोचन महामहिम राज्यपाल, जम्मू व कश्मीर, श्री एन0 एन0 वोहरा द्वारा 7 दिसंबर, 2017 को।
6) प्रो0 तेज प्रताप, अध्यक्ष, टी0ए0ई0जी0 कमेटी द्वारा टाईम–लर्न कार्यक्रम की वेबसाईट का शुभंरभ 8 दिसंबर, 2017 को।
7) टाईम पत्रिका की वर्षिक हिंदी एवं अग्रेंजी संस्करणों का प्रकाशन।

टी०ए०ई०जी० कमेटी के सदस्यों द्वारा फिल्ड भ्रमण

प्रदर्शनी हाल में महामहिम राज्यपाल, जम्मू व कश्मीर श्री एन० एन० वोहरा एवं अन्य विशेषज्ञ

टाईम–लर्न कार्यक्रम की जानकारी देते हुए डा० सुनील कु० अग्रवाल, डी०एस०टी०

उद्घाटन भाषण देते हुए डा० तेज प्रताप, अध्यक्ष, टी०ए०ई०जी० कमेटी

ए.जी.एम.डब्लू. का उद्घाटन भाषण देते हुए महामहिम राज्यपाल, जम्मू व कश्मीर, श्री एन. एन. वोहरा

टाईम-लर्न कार्यक्रम की वेबसाईट का शुभारंभ करते हुए प्रो० तेज प्रताप, अध्यक्ष, टी०ए०ई०जी० कमेटी

टाईम–लर्न कार्यक्रम की विवरण पुस्तिका का विमोचन करते हुए महामहिम राज्यपाल, जम्मू व कश्मीर, श्री एन० एन० वोहरा व अन्य पदाधिकारी

टाईम–लर्न कार्यक्रम के अर्तगत परियोजनाओं की प्रर्दशनी को देखते हुए विशेषज्ञ

अपने सुझाव एवं विचार के लिए

हिमालयन पर्यावरण अध्ययन एवं संरक्षण संगठन (हैस्को),
ग्राम शुक्लापुर, पो०ओ० अम्बीवाला, वाया प्रेमनगर, देहरादून–248001, उत्तराखण्ड
सम्पर्क : 9410394873 / 9761651454
ई–मेल : rakeshkumar_hesco@rediffmail.com, hescotime44@gmail.com